श्रीअरविन्द कर्मधारा

मई-जून, श्रीअरविन्द - १५०वीं जयंती

श्रीअरविन्द कर्मधारा

श्रीअरविन्द आश्रम
दिल्ली शाखा का मुखपत्र

मई-जून-2022

अंक -3

संस्थापक

श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर 'फकीर'

सम्पादन

अपर्णा रॉय

विशेष परामर्श समिति

सुश्री तारा जौहर, विजया भारती,

ऑनलाइन पब्लिकेशन ऑफ श्रीअरविन्द

आश्रम, दिल्ली शाखा

(निःशुल्क उपलब्ध)

कृपया सब्सक्राइब करें-

saakarmdhara@rediffmail.com

कार्यालय

श्रीअरविन्द आश्रम, दिल्ली-शाखा

श्रीअरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016

दूरभाषः 26567863, 26524810

आश्रम वैबसाइट

(www.sriaurobindoashram.net)

क्या यही अन्त है..?

क्या यही अन्त है उस सबका जो हम रहे हैं,
और वह सब जो हमने किया और स्वप्न में संजोया, –
एक विस्मृत नाम और मिटा हुआ एक रूप, –
क्या यही अन्त है?

पत्थर के नीचे कब्र में सड़ती हुई एक देह,
अथवा चिता में राख बन गया एक शव,
एक मन जो घुल गया, विस्मृत हो गए जिसके विचार, –
क्या यही अन्त है?

वह थोड़ा सा समय जो हमारा था और अब नहीं है,
हमारी आकांक्षाएँ जो कभी बहुत ऊँची थी
उपहासित हुई कठोर धरणी और निष्प्राण सूर्यप्रभा द्वारा, –
क्या यही अन्त है?

मानव से देवत्व की ओर उठने वाली हमारी लालसाएँ
जो चली गईं दूसरे हृदयों में
धोखा खाकर, मौत पर हँसकर और संसार को धिक्कारकर,
क्या यही अन्त है?

वीणा पड़ी हुई है; खामोश और खंडित;
क्या वह अनदेखा गायक मर चुका है?
चूँकि वृक्ष गिरा लिया गया जिस पर चिड़ियाँ गाती थीं,
क्या गीत को भी मूक हो जाना चाहिए?

मन में वह 'एक' जिसने योजना बनाई सोचा और संकल्प किया,
पृथ्वी के भाग्य को पुनर्गठित करने हेतु कार्य किया,
हृदय में वह एक जिसने प्यार किया और आशा की,
क्या उसका भी अन्त है?

मरणधर्मा में 'अविनाशी' नाम है उसका;
एक देव कलाकार यहाँ
सदा स्वयं को नव-नव दिव्य रूपों में करता है पुनर्सृजित,
अविराम अनवरत

जब तक वह सब पूर्ण न हो जाए जिसके लिए बने थे सितारे,
जब तक हृदय भगवान को खोज न ले। और आत्मा स्वयं को न
पहचान ले। और तब भी
कोई नहीं है अन्त ।

-श्रीअरविन्द

17 जून, 1913

वर दो हे प्रभु! कि मैं हो सकूं एक अग्निशिखा के समान,
जो प्रकाश देती है और ऊष्मा से भरपूर है,
हो सकूँ एक शीतल झरने के समान,
जो विश्व की तृष्णा करता है शांत ,
और एक वृक्ष की भाँति दे सकूँ सुरक्षा की छाँव।
ओह! मनुष्य कितने व्यथित और अज्ञानी हैं,
उन्हें आवश्यकता है एक महत सहायता की।
स्वामी! तुममें मेरा विश्वास और निर्भरता,
अब हो रहे हैं दिन पर दिन अधिक दृढ़ एवं पुष्ट,
मेरे हृदय में तुम्हारे प्रेम का प्रकाश हो रहा है अधिक उज्ज्वल एवं भरपूर,
और अब मैं तुम्हारे और अपने व्यक्तित्व के बीच,
कहीं , सम्पूर्ण प्रथ्वी के बीच नहीं खींच सकती कोई विभेद की रेखा।
प्रभु! तुम्हारा प्रेम अनंत है, अनुपम है तुम्हारा सत्य,
और तुम्हारा शक्तिशाली प्रेम ही करेगा इस विश्व की रक्षा।

-श्रीमाँ

विषय-सूची

संपादकीय	4
अतिमानसिक योग	8
अच्छाई	10
जिज्ञासा	12
उमरिया बीती जाय	12
मृत्यु क्यों होती है	14
कैदियों के लिए प्रेरणा - डॉ. जे.पी.सिहं	16
पुनर्जन्म का महत्त्व	17
त्रिविध जीवन	21
श्री अरविंद का रचना कर्म - पद्य	24
प्रार्थना और अभीप्सा	33
तनावपूर्ण जीवन और मानसिक शान्ति	35
सदगुण	36
श्रीअरविन्दायन - तपस्या की गुफा - पोंडिचेरी	41
मनोविज्ञान	45
आश्रम-गतिविधियाँ	46

संपादकीय

स्नेही पाठक गण,

आज हर तरफ श्री अरविंद की 150वीं जन्म-जयंती–वर्ष के महोत्सव का उत्साह छाया है ।सहज रूप से ही हमारा ध्यान श्रीअरविंद और श्रीमाँ की समग्र-शिक्षा पर केंद्रित हो जाता है । श्री अरविंद का पूर्ण योग जीवन के बहुआयामी स्वरूप के समग्र विकास का योग है , जो मानव में उसके व्यक्तित्व की मानसिक- प्राणिक और शारीरिक विकास की शिक्षा ही नहीं बल्कि चैत्य शिक्षा के प्रति भी जागरूकता पैदा करता है।

जो जीवन लक्ष्यहीन होता है वह सुखहीन भी होता है । तुमसें से प्रत्येक आदमी का अपना एक लक्ष्य होना चाहिये । परंतु यह कभी न भूलना चाहिये कि जैसा तुम्हारा लक्ष्य होगा वैसा ही तुम्हारा जीवन भी होगा ।

तुम्हारा लक्ष्य होना चाहिये उच्च और विशाल , उदार और उन्मुक्त और फिर तुम्हारा जीवन तुम्हारे लिए और दूसरों के लिये भी बहुमूल्य हो जायेगा । परंतु, तुम्हारा आदर्श चाहे जो भी हो, तुम उसे तब तक पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं कर सकते जब तक कि तुम अपने अंदर पूर्णता को प्राप्त नही कर लेते ।

अपनी पूर्णता को प्राप्त करने के लिये सबसे पहला पग है अपने विषय में सचेतन होना, अपनी सत्ता के विभिन्न अंगों और उनकी अलग- अलग क्रियाओं के विषय में सचेतन होना । तुम्हें इन सब अंगों को एक दूसरे से अलग करके देखना और पहचानना सीखना चाहिये जिससे कि तुम स्पष्ट रूप में यह पता लगा सको कि तुम्हारे अंदर जो क्रियाएँ घटित होती हैं , तुम्हें कर्म में जोतने वाले जो अनेक प्रकार के आवेग –प्रवेग , प्रतिक्रियाएँ और परस्पर विरोधी इच्छाएँ तुम्हारे अंदर उठती हैं ,उन सब का मूल कहाँ पर है । यह एक श्रमसाध्य अनुशीलन है और इसके लिए बहुत अधिक लगन और सच्चाई की आवश्यकता है । क्योंकि मनुष्य के स्वभाव की , विशेषकर उसके मन के स्वभाव की यह एक सहज प्रवृत्ति है कि वह जो कुछ सोचता , अनुभव करता , कहता और करता है उसकी वह एक अनुकूल व्याख्या दे डालता है ।

जब हम बहुत सावधानी के साथ इन सब क्रियाओं को देखेंगे, मानों इन्हें अपने उच्चतम आदर्श के न्यायालय में पेश करेंगे और उसके निर्णय के सामने झुक जाने का एक सच्चा संकल्प बनाये रखेंगे , केवल तभी हम यह आशा कर सकते हैं कि हमारे अंदर एक ऐसा विवेक उत्पन्न हो जो कभी भूल न करे । अगर हम सचमुच यह चाहते हों कि हम उन्नति करें और अपनी सत्ता के सत्य को जानने की क्षमता प्राप्त करें अर्थात् उस एक बात को जान जायें जिसके लियें वास्तव में हम उत्पन्न हुये हैं , जिस हम इस पृथ्वी पर अपना 'मिशन' कह सकते हैं , तो फिर , जो चीजें हमारी सत्ता के सत्य का खंडन करती हैं, फिर ,जो चीजें उसका विरोध करती हैं उन सबको हमें खूब नियमित रूप से और निरंतर होने वाली एक क्रिया के द्वारा , अपने से निकलते रहना होगा अथवा उन्हें अपने अंदर नष्ट करते रहना होगा ।

बस इसी तरह धीरे –धीरे हमारी सत्ता के सभी भाग , सभी अंग संघटित होकर हमारे चैत्य केन्द्र के इर्द–गिर्द एक पूर्ण सुसामंजस्य पूर्ण वस्तु का रूप ग्रहण कर सकेंगे । इस एकीकरण के कार्य को एक हद तक पूर्णता प्राप्त कराने के लिये एक लंबे समय की आवश्यकता होती है । अतएव, इसे सिद्ध करने के लिये , हमे धैर्य और सहनशीलता–रूपी अस्त्रों से सुसज्जित होना चाहिये और यह निश्चिचत कर लेना चाहिये कि अपने प्रयास को सफल बनाने के लिये जितनें दिनों तक अपना जीवन बनाये रखने की आवश्यकता होगी उतने दिनों तक बनाये रखेंगे ।

और इस पवित्रीकरण और एकीकरण का प्रयास करने के साथ ही साथ हमें अपनी सत्ता के यंत्रवत काम करने वाले बाहरी भाग को पूर्ण बनाने की ओर भी बहुत अधिक ध्यान देना चाहिये । जब उच्चतर सत्य अभिव्यक्त होने आये तब उसे

तुम्हारे अंदर एक ऐसी मनोमय सत्ता मिलनी चाहिये जो पर्याप्त रूप में सूक्ष्म और समृद्ध हो , जो प्रकट होने की चेष्टा करनेवाली भावना को विचार का एक ऐसा रूप देने में समर्थ हो जो उसकी शक्ति और स्पष्टता की रक्षा कर सके । फिर , वह विचार जब शब्दों का जामा पहनने की चेष्टा करे तब तुम्हारे अदंर उसे अपने को व्यक्त करने की यथेष्ट शक्ति प्राप्त हो जिससे कि शब्द उस विचार को प्रकाशित कर सकें और उसे विकृत न कर डालें और जिस सिद्धांत के अंदर तुम सत्य को मूर्तिमान करते हो उसे तुम्हारे सभी मनोभावों , तुम्हारी सभी इच्छाओं और क्रियाओं, तुम्हारी सत्ता के सभी कार्यकलापों में झलकते रहना चाहिए और अंत में , निरंतर प्रयास के द्वारा , स्वयं इन सब क्रियाओं को भी अपनी उच्चतम पूर्णता प्राप्त करनी चाहिये ।

यह सब एक चतुर्विध साधना के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है , जिसकी साधारण रूप–रेखा हम यहाँ दे रहें है। इस साधना के ये चारों रूप एक–दूसरे से अलग–अलग नहीं हैं, इनका अनुसरण मनुष्य एक साथ ही कर सकता है और वास्तव में ऐसा करना ही अधिक अच्छा है। इस साधना का जहाँ से आरम्भ होता है उसे हम 'चैत्य साधना' कह सकते हैं । हम अपनी सत्ता की अंतश्चेतना के केन्द्र को, अपने जीवन के उच्चतम सत्य के अंतर धाम को ' चैत्य' नाम से पुकारते है ; यही वह केन्द्र है जो इस सत्य को जान सकता है और अभिव्यक्त कर सकता है । अतएव हमारे लिये सबसे प्रधान बात यह है कि हम अपने अंदर इसकी उपस्थिति के विषय में सचेतन हों , इसकी उपस्थिति के ऊपर ध्यान एकाग्र करें और अपने लिये इसे एक जीवंत सत्य बना लें और इसके साथ अपना तादात्मय स्थापित कर लें ।

इस सचेतनता को प्राप्त करने के लिये और अंत में इस तादात्मय को सिद्ध करने के लिये देश और काल के अंतर्गत बहुत सी पद्धतियाँ निश्चित की गई हैं । कुछ पद्धतियाँ तो मनोवैज्ञानिक हैं , कुछ धार्मिक हैं और कुछ यांत्रिक भी हैं । सच पूछा जाये तो प्रत्येक मनुष्य तो वह पद्धति ढूँढ निकालनी होगी जो उसके सबसे अधिक उपयुक्त हो । और अगर साधक में सच्ची और सुदृढ़ अभीप्सा हो, अटूट और सक्रिय संकल्पशक्ति हो तो यह निश्चित है कि वह एक-न-एक तरीके से , बाहर अध्ययन और उपदेश द्वारा , भीतर एकाग्रता ध्यान , अनुभव और दर्शन के द्वारा , उस सहायता को अवश्य पायेगा जो लक्ष्य जो तक पहुँचने के लिये आवश्यक है । केवल एक चीज है जो पूर्ण रूप से अनिवार्य है और वह है, खोज निकालने और प्राप्त करने का संकल्प । इस संक्ल्प को पूरा करने के लिए आवश्यक है पूर्ण सजगता और सचेतनता ।ऐसी सजगता जिसमें निरंतर लक्ष्य प्राप्ति के लिए अपनी सत्ता के विविध अंगों को प्रशिक्षित करते रहने की जागरुकता बनी रहे ।एक कहानी याद आती है _

एक बार एक व्यक्ति दुर्गम पहाड़ पर चढ़ा, वहाँ पर उसे एक महिला दिखीं, वह व्यक्ति बहुत अचंभित हुआ, उसने जिज्ञासा व्यक्त की कि "आप इस निर्जन स्थान पर क्या कर रही हैं" ।

उन महिला का उत्तर था "मुझे यहाँ बहुत जरूरी काम करना हैं" ।

इस पर वह व्यक्ति बोला "आपको किस प्रकार का काम है, क्योंकि मुझे तो यहाँ आपके आस-पास कोई दिखाई नहीं दे रहा" ।

महिला का उत्तर था
"मुझे दो बाज़ों को और दो चीलों को प्रशिक्षण देना है,
दो खरगोशों को आश्वासन देना है,

एक गधे से काम लेना है, *एक सर्प को अनुशासित करना है और
एक सिंह को वश में करना है ।"

व्यक्ति बोला "पर वे सब हैं कहाँ, मुझे तो इनमें से कोई नहीं दिख रहा" ।

महिला ने कहा "ये सब मेरे ही भीतर हैं।"

"दो बाज़ जो हर उस चीज पर गौर करते हैं जो भी मुझे मिलीं, अच्छी या बुरी। मुझे उन पर काम करना होगा, ताकि वे सिर्फ अच्छा ही देखें ----
ये हैं मेरी आँखें।"

दो चील जो अपने पंजों से सिर्फ चोट और क्षति पहुंचाते हैं, उन्हें प्रशिक्षित करना होगा, चोट न पहुंचाने के लिए -----
वे हैं मेरे हाँथ।

खरगोश यहाँ - वहाँ भटकते फिरते हैं पर कठिन परिस्थितियों का सामना नहीं करना चाहते। मुझे उनको सिखाना होगा पीड़ा सहने पर या ठोकर खाने पर भी शान्त रहना ----
वे हैं मेरे पैर।

गधा हमेशा थका रहता है, यह जिद्दी है। मै जब भी चलती हूँ, यह बोझ उठाना नहीं चाहता, इसे आलस्य प्रमाद से बाहर निकालना है ----
यह है मेरा शरीर।

सबसे कठिन है साँप को अनुशासित करना। जबकि यह 32 सलाखों वाले एक पिंजरे में बन्द है, फिर भी यह निकट आने वालों को हमेशा डसने, काटने, और उनपर अपना ज़हर उडेलने को आतुर रहता है, मुझे इसे भी अनुशासित करना है ----
यह है मेरी जीभ।

मेरा पास एक शेर भी है, आह! यह तो निरर्थक ही घमंड करता है। वह सोचता है कि वह तो एक राजा है। मुझे उसको वश में करना है----
यह है मेरा मैं।

उक्त कहानी इसी जागरूकता के प्रतीकात्मक रूप को प्रस्तुत करती है । हमारे शरीर के प्रत्येक अंग की आदर्श उपयोगिता के प्रति हमारी सजगता सचेतनता से नई शिक्षा अथवा सच्ची शिक्षा का परिचय मिलता है।

पत्रिका का नया अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है, आइए हम सब मिलकर श्री अरविंद के योग-पथ को अपनाते हुए जीवन की प्रगति में समग्रता और पूर्णता की प्राप्ति के प्रयास का संकल्प करें ।

शुभेच्छा...,

- अपर्णा

श्रीअरविन्द आश्रम-दिल्ली शाखा
श्रीअरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016

"उन सबको जो आश्रम की दिल्ली शाखा में कार्य करते हैं व शिक्षा प्राप्त करते हैं मैं अपना आशीर्वाद भेजती हूँ। प्रत्येक को चाहिए कि वह अपनी सामर्थ्यानुसार अच्छे कार्य करें व परिणाम की चिंता भगवान पर छोड़ दें।"

-श्रीमाँ

जिनके अंदर अभीप्सा हो उनके लिए
प्रिय मित्र, दिव्य आत्मन!

जिनके अंदर भगवान के लिए समर्पण की और उच्चतर जीवन की अभीप्सा हो और भगवान का काम करने की प्रेरणा होती हो – हम उनका आश्रम में स्वागत करेंगे।

आयु का कोई बंधन नहीं। स्वस्थ शरीर व जागृत चेतना का होना आवश्यक है। जीवन के सामान्य व्यक्तिगत उत्तरदायित्वों के बंधन से मुक्त होना आवश्यक है, जिससे वे स्थिरतापूर्वक एकाग्र होकर आश्रम में रह सकें और साधना कर सकें।

शुभचिन्तक
अध्यक्ष
वर्ष-18, मई-1988, अंक-2

अतिमानसिक योग

- श्रीअरविन्द

अतिमानसिक योग एक ही साथ भगवान की ओर अंतरात्मा का आरोहण और परमदेव का शरीरस्थ प्रकृति में अवरोहण है ।आरोहण आत्मा ,मन, प्राण और शरीर का एक–केंद्रित सर्व-संचित ऊपर की ओर उठती हुई , अभीप्सा की मांग करता है और अवरोहण समस्त सत्ता की अनंत और शाश्वत की ओर पुकार को बुलाता है । अगर यह पुकार और यह अभीप्सा हो और अगर वे हमेशा बढ़ती रहे और समस्त प्रकृति पर अधिकार कर ले तभी और केवल तभी अतिमानसिक रूपांतर संभव हो सकता है ।

समस्त सत्ता का एक महत्तर दिव्य चेतना को ग्रहण करने और उसमे प्रवेश करने के लिए -- जो पहले ही से ऊपर और पीछे विद्यमान है और इस मर्त्य अर्द्ध–सचेतन जीवन को चारों ओर घेरे हुए है – उसमें उद्घाटन उसके प्रति समर्पण जरुरी है । और साथ ही दिव्य शक्ति की अधिकाधिक बलवान् और आग्रही क्रिया को सहने की बढ़ती हुई क्षमता होनी चाहिए , यहाँ तक कि आत्मा अनंत माँ के हाथों में एक बालक बन जाए। इस योग में भी अन्य सभी योगों की जानी हुई सभी प्रक्रियाओं का समय–समय पर अवर पद्धतियों के रूप में प्रयोग होता है और एक बार ये हों फिर वे अनिवार्य नहीं रहती।

अंत में यह पता चलेगा कि मन , प्राण और शरीर के किसी भी प्रयास द्वारा या किसी मानव मनोवैज्ञानिक या शारीरिक प्रक्रिया द्वारा यह योग संपादित नहीं किया जा सकता । इसे केवल परमा शक्ति की क्रिया ही पूरा कर सकती है । लेकिन उसका तरीका एक साथ बहुत गुह्य रुप से प्रत्यक्ष तथा बाहरी रुप से पेचीदा, इतना अधिक बड़ा, इतना सूक्ष्म है कि विस्तार के साथ उसका अनुसरण नहीं किया जा सकता, और हमारी मानव बुद्धि उसे सूत्रों में काट–छाँट नहीं सकती ।

मनुष्य स्वयं अपने प्रयास से अपने – आपको मनुष्य से बड़ा नहीं बना सकता लेकिन वह अपने अंदर कार्य करने के लिए भागवत सत्य और उसकी शक्ति का आह्वान कर सकता है । भागवत प्रकृति का अवरोहण ही मानव पात्र को दिव्य बना सकता है ।इस योग का संकेत –शब्द ही है रुपान्तरकारी परम शक्ति के प्रति आत्म– समर्पण ।

हम प्रकृति के जिस दिव्यीकरण की बात कर रहे हैं यह केवल एक प्रकार की अतिमानवता में वृद्धि नहीं, रुपान्तरण है , हमारी अज्ञानमय प्रकृति के मिथ्यात्व से दिव्य–प्रकृति के सत्य में परिवर्तन है । मानसिक या प्रणिक अर्द्ध –देव , असुर , राक्षस , पिसाच ,प्राणिक दैत्य, भूत अपनी पराकाष्ठ शक्ति , अवस्था और अपने विशेष स्वभाव के गठन में अतिमानव हैं परंतु वे दिव्य नहीं हैं , परम भागवत नहीं है क्योंकि वे केवल महत्तर मानसिक शक्ति या प्राणिक शक्ति में निवास करते हैं परम सत्य में नहीं और केवल परम सत्य ही दिव्य है केवल वे ही जो चरम सत्य-चेतना में निवास करते और उसे मूर्त रूप देते हैं भीतर से दिव्य बिंब में निर्मित या पुनर्निर्मित होते हैं ।

अतिमानसिक योग का लक्ष्य है परम सत्य चेतना में परिवर्तित होना, लेकिन यह सत्य मन से परे की चीज है और यह चेतना उच्चतम मानसिक चेतना से कहीं ऊपर है । क्योंकि मन का सत्य हमेशा सापेक्ष, अनिश्चित और आंशिक होता है जब कि यह महत्तर सत्य अनिवार्य , अलंध्य और संपूर्ण होता है । मन का सत्य हमेशा अपर्याप्त निरूपण और बहुधा भ्रामक निरूपण होता है और जब बहुत अधिक ठीक भी हो तो केवल एक बिंब होता है , सत्य की छाया , उसका शरीर नहीं । मन न तो सत्य में निवास करता है न उस पर अधिकार रखता है बल्कि केवल उसे खोजता है और अधिक से अधिक वह उसके लबादे के कुछ ताने भी पकड़ लेता है । अतिमानस सत्य में निवास करता है और उसका निजी द्रव्य रूप और अभिव्यक्ति है । उसे इसकी खोज नहीं करनी होती , वह उसे सदा अपने–आप अपने अधिकार में रखता है और वह जिस पर अधिकार रखता है वही होता है । यही इनके भेद का मर्म है ।

मन से अतिमन की ओर संक्रमण में जो परिवर्तन होता है वह केवल हमारे ज्ञान की शक्ति में क्रांति नहीं है । पूर्ण और स्थाई होने के लिए हमारी इच्छा– शक्ति , हमारे भावों , संवेदनाओं , समस्त प्राणिक शक्ति और उसकी सामर्थ्य और अन्ततः हमारे शरीर का तथा उसकी क्रियाओं का भी दिव्य रूपांतरण होना चाहिए । उसके बाद ही कहा जा सकता हूँ कि अतिमानस यहाँ धरती पर है , उसकी जड़ें पार्थिव तत्व में है और उसने दिव्य प्राणियों की एक नवीन जाति में मूर्त्त रूप लिया है । अपने उच्चतम शिखर पर अतिमानस भागवत विज्ञान है – भगवान की प्रज्ञा शक्ति , और आनंद पोषण , शासन और भोग करते हैं ।

अतिमानसिक योग का प्रथम शब्द है समर्पण ; उसका अंतिम शब्द भी समर्पण ही है । योग का आरंभ होता है अपने आपको शाश्वत भगवान के प्रति अर्पित करने की इच्छा से ; अपने आपको दिव्य चेतना में उठाने , पूर्णता , रूपांतर के लिए पूर्ति होती है संपूर्ण आत्मदान से क्योंकि जब आत्मदान पूरा हो जाए तभी योग की चरम स्थिति आती है, अतिमानसिक भगवान के अंदर समय ग्रहण , सत्ता की पूर्णता और प्रकृति का , रूपांतर ।

हमने परम पुरूष से जो वरदान माँगा है वह , धरती उच्चतम से जो माँग सकती है उसमें सबसे बड़ा है , वह है ऐसा परिर्वतन जिसे चरितार्थ करना सबसे कठिन है , जिसकी शर्ते सब से अधिक कठोर हैं। वह इससे जरा भी कम नही है कि परम सत्य और शक्ति का जड़ में अवतरण हो, अतिमानस जड़ भौतिक लोक चेतना में और जगत में प्रतिष्ठित हो और नीचे जड़ भौतिक तत्त्व तक सम्पूर्ण हो । केवल परम कृपा ही इस चमत्कार को कार्यान्वित कर सकती हूँ ।

परम शक्ति अधिकतम जड़ चेतना में उत्तर आई है लेकिन वह भौतिक पर्दे की घनता के पीछे खड़ी अभिव्यक्त होने , खुलकर काम करना शुरू करने से पहले परम कृपा की सच्ची और प्रभावकारी अवस्थाओं की माँग करती हैं । और पहली शर्त यह है कि वह जड़ भौतिक सत्ता और प्रकृति में अभिव्यक्त हो उससे पहले बिना किसी लाग – लपेट के तुम्हारे अंदर सत्य को पूर्णतया स्वीकार किया जाए ।

संपूर्ण समर्पण दिव्य प्रभाव की ओर ऐकान्तिक उद् घाटन , सत्य का सतत और समग्र चुनाव और मिथ्यात्व का त्याग –बस यही शर्ते हैं । लेकिन इन्हें पूरी तरह , बिना किसी प्रतिबंध , बिना किसी टाल– मटोल या बहाने के सादगी और सच्चाई के साथ अत्यधिक भौतिक चेतना और उसकी क्रियाओं तक में चरितार्थ करना होगा ।

"साहसी बनो और अपने बारे में इतना अधिक न सोचो । तुम दुःखी और असंतुष्ट इसलिए रहते हो क्योंकि तुम अपने छोटे से अहंकार को अपनी तन्मयता का केंद्र बना लेते हो । इन सब बीमारियों का बड़ा इलाज है अपने – आपको भूल जाना । निश्चय ही अपने साथ बहुत ज्यादा व्यस्त न रहना हमेशा अधिक अच्छा होता है ।

अच्छाई

मैंने बहुत बार लोगों को यह कहते सुना है: "ओह अब जबकि मैं अच्छा बनने की कोशिश करता हूँ तो ऐसा लगता है कि सब मेरे साथ दुष्टतापूर्ण व्यवहार करते हैं।" लेकिन यह ख़ास तुम्हें यह सिखाने के लिए होता है कि स्वार्थ-भरे उद्देश्य के साथ अच्छा नहीं बनना चाहिए, इसलिए भी अच्छा नहीं बनना चाहिए कि दूसरे तुम्हारे साथ अच्छा व्यवहार करें-अच्छा बनने के लिए अच्छा बनना चाहिए ।

हमेशा एक ही पाठ सीखना होता है: जितना अच्छा कर सकते हो करते चलो, जितना कर सको, उससे अधिक अच्छा करो; लेकिन परिणाम की आशा के बिना, परिणाम के बारे में सोचे बिना। यह मनोवृत्ति कि अपने अच्छे कार्य के लिए पुरस्कार की आशा करना; अच्छा इसलिए बनना कि हम सोचते हैं कि उससे जीवन अधिक सरल होगा-अच्छे कार्य के सारे मूल्य को घटा देता है।

अच्छाई के प्रेम के कारण अच्छा बनना चाहिए, ईमानदारी के प्रेम के कारण ईमानदार होना चाहिए, पवित्रता के प्रेम के कारण पवित्र होना चाहिए और नि:स्वार्थता से प्रेम के कारण नि:स्वार्थ होना चाहिए; तब तुम राह पर आगे बढ़ोगे, यह बात निश्चित है।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड 3, पृ. 296श्री

श्रीमाँ के प्रतीक चिह्न में अंकित इस गुँण की सरल अभिव्यक्ति हम निम्नांकित कहानी में पाते हैं -

कहानी -

शाम हो चली थी लगभग साढ़े छे बजे थे। वही होटल, वही किनारे वाली टेबल और वही चाय,मैं सिगरेट के हर कश के साथ-साथ चाय की चुस्की ले रहा था।इतने में सामने वाली टेबल पर एक आदमी अपनी नौ-दस साल की लड़की के साथ आकर बैठ गया।

उस आदमी का शर्ट फटा हुआ था, ऊपर के दो बटन गायब थे, पैंट भी मैला ही था, रास्ते पर खुदाई का काम करने वाला मजदूर जैसा लग रहा था। लड़की का फ्राक धुला हुआ था और उसने बालों में वेणी भी लगाई हुई थी।उसका चेहरा अतयंत आंनदित था और वे बड़े कुतूहल से पूरे होटल को इधर-उधर से देख रही थी। उनके टेबल के ऊपर ही चल रहे पं।खे को भी वो बार-बार देख रही थी, जो उनको ठंडी हवा दे रहा था। गद्दी वाली कुर्सी पर बैठकर वो और भी प्रसन्न दिख रही थी। उसी समय वेटर ने दो स्वच्छ गिलासों में ठंडा पानी उनके सामने रखा।

उस आदमी ने अपनी लड़की के लिए एक डोसा लाने का आर्डर दिया । यह आर्डर सुनकर लड़की के चेहरे की प्रसन्नता और बढ़ गई। और आपके लिए? वेटर ने पूछा नहीं ,मुझे कुछ नहीं चाहिए, उस आदमी ने कहा। कुछ ही समय में गर्मागर्म बड़ा वाला , फुला हुआ डोसा आ गया, साथ में चटनी साँभार था। लड़की डोसा खाने में व्यस्त हो गई और वो उसकी ओर उत्सुकता से देखकर पानी पी रहा था। उतने में उसका फोन बजा, वही पुराना वाला फोन, उसके मित्र का फोन आया था, वो

बता रहा था कि आज उसकी लड़की का जन्मदिन है और वो उसे लेकर होटल में आया है। वह बता रहा था कि उसने अपनी लड़की को कहा था कि यदि वो अपने स्कूल में पहले नंबर पर आएगी तो वह उसे उसके जन्मदिन पर डोसा खिलाएगा।

और वो अब डोसा खा रही है ,थोड़ा रूककर, नहीं रे हम दोनों कैसे खा सकते हैं? हमारे पास इतने पैसे कहाँ हैं? मेरे लिए घर में बेसन-भात बना हुआ है ना। उसकी बातों में व्यस्त रहने के कारण मुझे गर्म चाय का झटका लगा और मैं वास्तविकता में लौटा।कोई कैसा भी हो अमीर या गरीब, दोनों ही अपनी बेटी के चेहरे पर मुस्कान देखने के लिए कुछ भी कर सकते हैं **मैं उठा और कांउटर पर जाकर अपनी चाय और दो दोसे के पैसे दिए और कहा, उस आदमी को एक और डोसा दे दो वो अगर पैसे के बारे में पूछे तो उसे कहना कि हमने तुम्हारी बातें सुनीं, आज तुम्हारी बेटी का जन्मदिन है और वो स्कूल में पहले नंबर पर आई है इसलिए होटल की ओर से यह तुम्हारी लड़की लिए ईनाम है, उसे आगे चलकर इससे भी अच्छी पढ़ाई करने को बोलना परन्तु , भूलकर भी मुफ्त शब्द का उपयोग मत करना ,उस पिता के स्वाभिमान को चोट पहुँचेगी। होटल मैनेजर मुस्कुराया और बोला कि यह बिटिया और उसके पिता आज हमारे मेहमान हैं, आपका बहुत-बहुत आभार कि आपने हमें इस बात से अवगत कराया। उनके स्वागत का पूरा जिम्मा आज हमारा है, आप यह पुण्य कार्य किसी अन्य जरूरतमंद के लिए कीजिएगा।**

वेटर ने एक और डोसा उस टेबल पर रख दिया, मैं बाहर से देख रहा था। उस लड़की का पिता हड़बड़ा गया और बोला कि मैंने तो एक ही डोसा बोला था। तब मैनेजर ने कहा कि अरे!आपकी लड़की स्कूल में पहले नंबर पर आई है, इसलिए ईनाम के रूप में आज होटल की ओर से आप दोनों को डोसा दिया जा रहा है। उस पिता की आँखें भर आईं, उसने अपनी लड़की को कहा, देखा बेटी, ऐसी ही पढ़ाई करेगी तो देख क्या-क्या मिलेगा।

उस पिता ने वेटर को कहा कि क्या मुझे यह डोसा बांधकर मिल सकता है? यदि मैं इसे घर ले गया तो मैं और मेरी पत्नी दोनों आधा-आधा मिलकर खा लेंगे, उसे खाने को नहीं मिलता। जी नहीं श्रीमान, आप अपना दूसरा डोसा यहीं पर खाइए। आपके घर के लिए मैंने 3 डोसे और मिठाइयों का एक पैक अलग से बनवाया है। आज आप घर जाकरअपनी बिटिया का बर्थ डे बड़ी धूमधाम से मनाइएगा, और मिठाईयाँ इतनी हैं कि आप पूरे मोहल्ले को बाँट सकते हैं।

यह सब सुनकर मेरी आँखे खुशी से भर आईं, मुझे इस बात पर पूरा विश्वास हो गया कि जहाँ चाह, वहाँ राह है। अच्छे काम के लिए एक कदम बढ़ाइए, फिर देखिए आगे क्या होता है। बस प्रयास की जरूरत है,अच्छाई जैसे गुण के रूप में दिव्यता का चारों तरफ प्रसार हो सकता है।

"हमें अनवरत अभीप्सा की आन्तरिक अवस्था बनाये रखना चाहिये, लेकिन जब हम अभीप्सा नहीं कर सक रहे हों, तब हमें एक बालक जैसी सरल निष्कपटता से प्रार्थना करना चाहिये।"

-श्रीमाँ

जिज्ञासा

यह ओसों की डाल पिरो दी जीवन के आँगन में?
हास-अश्रु की सजल ज्वाला यह किसने फैला दी दिशि क्षण में!
ताराओं से पुता हुआ नीरव अनन्त चिर अवनत ऊपर,
कौन गहन के अवगुण्ठन से झाँक रहा वह हँस-हँस भू पर?
इस धरती के उर में है वह शशिमुख का असीम सम्मोहन,
रोक नहीं पाते भू के तट दीवन-वारिधि का उद्वेलन!
किस अदम्य आकांक्षा से अन्तरतम जग का रे आन्दोलित,
किसकी गति से भ्रमित महानीलिमा बन गयी कैसे ज्योतित!
यह अगाध निस्तल रहस्य किसका अकूल में व्याप्त नील घन,
तड़क रही जिसमें विधुता-सी विश्वकामना भर गुरु गर्जन!
क्यों प्राणों से हरित धरित्री, किस सुख से जीवन-अणु स्पन्दित?
किसकी शुभ किरण यह सहसा सतरंग इन्द्रधनुष में चित्रित।
लौट-लौट आते तट छूकर वाद-विवाद, शास्त्र, षड् दर्शन,
सतत डूबते-उतराते सुख-दुख, इच्छाएँ, जन्म ओ' मरण!
श्याम, विश्व घनश्याम, गहन घनश्याम रहस्य अनन्त चिरन्तन,
चिर अनादि-अज्ञेय, पार जा पाते नहीं चक्षु, वाणी, मन!

-सुमित्रानन्दन पन्त

उमरिया बीती जाय

उमरिया बीती जाय करके गुमान। ना घर जाना, करीम ना जाना, ना जाना भगवान॥
रहीम ना जाना, करीम ना जाना, ना जाना भगवान॥
उमरिया.....
धीरज-धर्म-मित्र ना जाना, ना जाना ईमान।
भाई-बंधु-कुटुंब ना जाना, ना जाना मेहमान॥
उमरिया.....
एक दिन पड़ेगा काल का फंदा, छुपकर ले जाएगा प्राण।
रे मनुआ तुम अब भी चेतो, भज लो जी भगवान॥
उमरिया.....

-नरेन्द्र कुमार मिश्र

उदारता

"सज्जनता और उदारता आत्मा के सूक्ष्म आकाश हैं; इनके बिना व्यक्ति काल-कोठरी में पड़ा कीड़ा ही दिखाई देता है।"

-श्रीअरविन्द

श्रीमाँ समझाती हैं: सज्जनता का अर्थ है समस्त वैयक्तिक हिसाब-किताब को अस्वीकार कर देना। उदारता का अर्थ है दूसरों के संतोष में अपना संतोष पाना।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड 10, पृ. 327

महालक्ष्मी के विषय में श्रीअरविन्द यहाँ कहते हैं: "वे सभी चीज़ें जो दीन-हीन होती हैं..... उनके आगमन को रोकती हैं"?

हाँ, वह सब जो दरिद्र हैं, उदारता से रहित, उत्साह की प्रखरता से शून्य, प्राचुर्य से रहित, आंतरिक समृद्धि से शून्य; जो कुछ सूखा, ठंडा, गुड़ी-मुड़ी होता है वह सब महालक्ष्मी के आगमन को रोकता है। यहाँ प्रश्न स्थूल धन का नहीं है, समझे! एक अत्यंत धनी व्यक्ति भी महालक्ष्मी की दृष्टि में भयानक रूप से दरिद्र हो सकता है। और एक बहुत दरिद्र व्यक्ति बहुत धनी हो सकता है यदि उसका हृदय उदार हो।.....

दरिद्र मनुष्य वह व्यक्ति है जिसमें कोई गुण न हो, कोई शक्ति, कोई बल-सामर्थ्य कोई उदार-भाव न हो। वह एक दु:खी, अभागा मनुष्य भी होता है। परंतु कोई व्यक्ति केवल तभी दु:खी होता है जब वह उदार नहीं होता-यदि किसी के अंदर ऐसा उदार स्वभाव हो जो बिना हिसाब लगाए अपने-आपको दे देता हो, तो वह कभी दु:खी नहीं होता। जो लोग स्वयं अपने-आप पर ही केंद्रित होते हैं और जो सर्वदा अपने ही नज़रिए से देखते हैं-केवल ये ही लोग दु:खी होते हैं। परंतु जब कोई अपने-आपको उदारतापूर्वक, हिसाब लगाए बिना दे देता है तो वह कभी दु:खी नहीं होता-कभी नहीं। जो व्यक्ति लेना चाहता है बस वही दु:खी होता है; जो अपने-आपको दे देता है वह कभी वैसा नहीं होता।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड 4, पृ. 485-86

साधु

एक गाँव में एक साधु था वह हर दिन गाँव वालों को उपदेश देता था एक दिन वह साधु उपदेश दे रहा था उसी बीच एक स्त्री उनके पास आई और जोर-जोर से रोते हुए बार-बार कहने लगी मेरी कोई संतान नहीं है महात्मा मेरी बात भी सुन लो। इस पर साधु क्रोधित होते हुए कहने लगे 'शांत हो जाओ' और साधु ने उसे एक थैले में चने दे दिए और कहाँ जब तक मेरा उपदेश समाप्त नहीं हो जाता तुम इसे खाओ, वह स्त्री एक कोने में बैठ कर चने खाने लगी ।

उसी गाँव के कुछ बच्चे भी अपने माता-पिता के साथ साधु का उपदेश सुनने के लिए आए थे । स्त्री को चने खाते देख बच्चों का मन भी चने खाने को हुआ और वह उस स्त्री के पास पहुँच गए और उससे चने माँगने लगे लेकिन उस स्त्री ने बच्चों को चने का एक दाना भी नहीं दिया और सारे चने स्वयं खा गई। अंत में जब उपदेश समाप्त हुआ तो सभी अपने घर को चले जाते हैं तभी वह स्त्री फिर से साधु के पास गई और कहने लगी अब तो मेरी समस्या का हल दो, महात्मा मैं निःसन्तान हुँ मुझ पर कृपा करो महात्मा। साधु क्रोध में कहते है इतने सारे चने तुम अकेले खा गई जो मैंने तुझे दिए थे और तूने उन बच्चों को एक दान तक नही दिया तो भगवान तुझे बच्चे कैसे दे सकते हैं, पहले कुछ पाने योग्य बनो।

मृत्यु क्यों होती है?

-श्रीमाँ

जिनकी चेतना जरा भी जाग्रत हो चुकी है उन सभी व्यक्तियों ने अपने जीवन में कम-से-कम एक बार तो यह प्रश्न किया है। प्रत्येक प्राणी के गंभीरतम प्रदेश में अधिक जीवित रहने, विकास करने तथा जीवन को लंबा बनाने की एक ऐसी मांग मौजूद है जिससे कि मृत्यु का सम्पर्क उन्हें आघात पहुँचाता है और उनमें जुगुप्सा उत्पन्न कर देता है। कुछ संवेदनशील प्राणियों में तो वह भय और कुछ में क्रोध भी पैदा करता है। व्यक्ति अपने से पूछता है " यह क्या मायावी नाटक है जिसमें मनुष्य को बिना चाहे और बिना समझे भाग लेना पड़ता है? यदि मरना ही है तो पैदा होने का क्या अर्थ? प्रगति, उन्नति और अपनी शक्तियों के विकास के लिए किए गए प्रयत्नों से क्या लाभ , यदि अंत में अवनति और पीछे नाश और विघटन ही होता है ? "कुछ तो चुपचाप निष्क्रिय भाव में भावी के अधीन हो जाते हैं जिसे वे कठोर समझते हैं, कुछ विद्रोह करते हैं अथवा यदि वे कम शक्ति वाले हुए तो, निराश हो जाते हैं। पर ये प्रश्न सदा ही सबके सामने उठते रहते हैं। यदि उस सबके पीछे कोई चेतन संकल्प विद्यमान लगता है तो वह दानवी ही प्रतीत होता है।

किंतु श्रीअरविन्द हमें यहाँ बताते हैं कि मृत्यु जड़ प्रकृति की चेतना में पूर्णता और विकास की मांग को जागृत करने का एक अनिवार्य साधन थी। उसके बिना प्राणी जिस अवस्था में वे हैं उसी में अनिश्चित समय के लिए संतोष किए पड़े रहते। इसके अतिरिक्त, हम जानते हैं कि प्रत्येक वस्तु सर्वदा उन्नति एवं विकास करती रहती है, दूसरे शब्दों में, समस्त सृष्टि, समस्त विश्व एक पूर्णता की और विकसित हो रहा है; और ज्यो-ज्यों व्यक्ति आगे बढ़ता है, त्यों- त्यों यह पूर्णता पीछे हटती प्रतीत होती है। कारण, जो एक समय पूर्ण प्रतीत होता था, वह पीछे वैसा प्रतीत नहीं होता। सत्ता की चेतना-संबंधी सूक्ष्मतम अवस्थाएँ विकास की इसी दशा का उस हद तक अनुसरण करती हैं जिस हद तक वे अपने-आपको चरितार्थ कर लेती हैं और वे जितनी अधिक सूक्ष्म होती हैं उतनी ही निकट उनकी प्रगति की लय दिव्य विकास की लय के पास पहुंचती है। किन्तु यह जड़ जगत स्वभाव से ही कठोर है, यहाँ रूपांतर बड़ा धीमा, अत्यंत धीमा होता है, इतना धीमा कि काल की गणना के लिए, जैसा कि मानव-चेतना उसे देखती है, वह करीब-करीब दृष्टि में ही नहीं आता। इसका परिणाम यह होता है कि बाह्य और आंतरिक चेष्टा में सदा ही संतुलन का अभाव रहता है। विकास-क्रिया का अनुसरण करने में, संतुलन के इस अभाव ने, बाह्य विकास की असमर्थता ने ही विघटन और आकार के परिवर्तन को एक आवश्यकता बना दिया है।

तथापि, यदि हम इस जड़ पदार्थ में इतनी चेतना फूँक सकें कि उसकी विकास-क्रिया सत्ता के सूक्ष्मतर भागों के साथ–साथ चलने लगे और यदि वह इतना नमनीय हो जाए कि आंतरिक विकास का अनुसरण कर सके, तो संतुलन नहीं टूटेगा और न मृत्यु की आवश्यकता ही होगी।

अतएव वर्तमान समय में, क्योंकि हम इसके बारे में कुछ अधिक जानते हैं, हमें रूपांतर को अवश्य ही साधित करना है, ऐसा हम उन साधनों की सहायता से जो हमें उपलब्ध हैं तथा 'शक्ति' ' चेतना ' और नई सामर्थ्य ' का आवाहन करके करेंगे ; यह शक्ति जड़ पदार्थ में उस स्पंदन का प्रवेश करा सकती है जिसमें उसे रूपांतरित करने तथा नमनीय, कोमल और विकसनशील बनाने की सामर्थ्य मौजूद है।

यह स्पष्ट है कि इस रूपांतर के रास्ते में जो सबसे अधिक गंभीर बाधा आती है वह वस्तुओं के वर्तमान स्वरूप के प्रति आसक्ति है। प्रकृति अपने पूरे कार्य में यह देखती है कि जिन व्यक्तियों की चेतना गहन है वे जल्दी-जल्दी आगे बढ़ना चाहते हैं। पर वह घुमावदार रास्ते, क्रमिक परीक्षण, रुकावटे और बार-बार किए गए आरंभ एवं नई खोजे पसंद करती है। मार्ग की सनकी घटनाओं तथा अनुभव की आकस्मिकता भी उसे पसंद है। हम यह कह सकते हैं कि यह रूपांतर जितना अधिक समय ले उतना ही प्रकृति का मनोरंजन होता है।

किंतु बढ़िया-से-बढ़िया खेल से भी तुम तंग आ जाते हो। एक ऐसा समय आता है जब तुम्हें उसे बदलने की आवश्यकता होती है और तब तुम एक ऐसे खेल का स्वप्न देखते हो जिसमें आगे बढ़ने के लिए किसी चेतना को नष्ट करने की जरूरत नहीं होती, बल्कि जिसमें उन्नति के लिए एक ऐसा उत्साह होगा कि तुम्हें सदा ही नए साधन और नए भाव प्राप्त होंगे। इनमें प्रेरणा इतनी तीव्र होगी कि दुर्बलता, निर्बोधता, थकावट और उपेक्षा सब समाप्त हो जाएगी।

ज्यों ही शरीर कुछ उन्नति कर चुकता है उसे बैठ जाने की आवश्यकता क्यों पड़ती है? वह थक जाता है और कहता है, "ठहरो, मुझे आराम करने के लिए कुछ समय दो।" वस्तुतः यही बात उसे मृत्यु की ओर ले जाती है। यदि उसके अन्दर सदा पहले से अधिक अच्छा करने का, सदा अधिक स्पष्ट, अधिक सुंदर, अधिक और सदा अधिक युवा बने रहने का यह उत्साह होता तो व्यक्ति 'प्रकृति' की इस भयंकर प्रणाली से बच सकता था।

प्रकृति के लिए इसमें से कोई भी चीज महत्त्वपूर्ण नहीं है। वह 'समग्र' की ओर देखती है, वह इस बात का ख्याल रखती है कि वहाँ से कोई चीज खो न जाए। वह जानती है कि यह केवल अनगिनत, अत्यंत छोटे और तुच्छ तत्त्वों का मिश्रण है जिसका उद्देश्य किसी नई चीज को बाहर निकालना है। किंतु यह खेल सबके लिए मनोरंजक नहीं होता, और यदि कोई उसके समान और उससे अधिक विशाल चेतना प्राप्त कर ले तो वही कार्य भिन्न तरीके से क्यों नहीं हो सकता?

यही समस्या आजकल हमारे सामने है, और अतिमानसिक शक्ति की नई सहायता प्राप्त हो जाने के बाद इस बृहत् खेल को अधिक सुंदर, अधिक समस्वर, अधिक सच्चा, दूसरे शब्दों में , अधिक दिव्य बनाने के लिए क्यों नहीं हाथ में ले लेना चाहिए ?

यदि कुछ मस्तिष्क इतने बलशाली हों कि वे इस शक्ति को ग्रहण कर सकें तथा इसे चरितार्थ करने के आवश्यक कार्य को विधिवत् कर सकें तो अभी इतना ही पर्याप्त होगा। कुछ ऐसी चेतनाएँ " होनी चाहिएँ जो 'प्रकृति' को यह विश्वास दिला सकें कि उसके साधनों के अलावा और भी साधन हैं।

यह एक पागलपन प्रतीत होता है, पर समस्त नई वस्तुएँ जब तक वे वास्तविकताएँ नहीं बन गईं, पागलपन ही प्रतीत होती रही हैं। अब वह समय आ गया है जब इस पागलपन ' को चरितार्थ हो जाना चाहिए। और, क्योंकि हम सब यहाँ मौजूद हैं, और यद्यपि तुममें से कई यहाँ रहने का कारण भी नहीं जानते और ये कारण वस्तुतः अत्यंत सचेतन हैं, हम इस 'पागलपन' को चरितार्थ करने का निश्चय कर सकते हैं । कम-से–कम यह जीवित रहने के कष्ट का उचित पुरस्कार तो हो ही जाएगा।

"समस्त सच्ची प्रार्थनाएँ स्वीकार की जाती हैं, लेकिन उन्हें स्थूल रुप में निष्पादित होने में समय लगता है, हमारी प्रत्येक पुकार का प्रत्युत्तर हमें दिया जाता है।"

-श्रीमाँ

कैदियों के लिए प्रेरणा

डॉ. जे.पी.सिंह
सुलतानपुर

आदरणीय जेल अधीक्षक, जेल के सभी कर्मी एवं कैदी भाइयों, आज हम यहाँ आपके बीच में अन्तर्राष्ट्रीय आध्यात्मिक संस्था श्रीअरविन्द सोसाइटी से आए हैं। इसका हेड आफिस पुदुच्चेरी में है यहाँ पर आप जिनका फोटो देख रहे हैं वह हैं श्रीअरविन्द एंव श्रीमाँ । उन्होंने जीवन के बहुत वर्ष साधना करके पूरी पृथ्वी के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया और हमें यह बताया है कि जीवन में किसी भी स्थल पर रहकर भगवान से जुड़ा जा सकता है। उसके बहुत सारे उद्धेश्य हैं जिसकी चर्चा हम फिर भी करेंगे।

मेरे विचार से आप में से बहुत सारे लोगों ने श्रीमां एवं श्रीअरविन्द के बारे में पढ़ा या सुना होगा। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि संभवत: आप लोगों में ऐसे लोग ही होंगे जो या तो आवेश में गलती कर गए होंगे अथवा किसी गलतफहमी का शिकार हुए होंगे या कुछ लोग यहाँ निर्दोष भी होंगे जो किसी ईर्ष्या आदि के कारण फंसा दिए गए हैं। जेल में आना नियम की दृष्टि से अच्छा नहीं माना जाता और आप लोगों को भी यह अच्छा नहीं लग रहा होगा। लेकिन नियम तो नियम है वह अपना काम करेगा जिस तरह से रोबोट काम करता है उसमें कोई संवेदना नहीं होती। आपने शायद सुना होगा कि श्रीअरविन्द से अंग्रेज लोग डरते थे और कहा जाता था कि वह अगर बाहर रहें और सारे क्रांतिकारियों को बंद कर दिया जाए तो वह फिर एक फौज क्रांतिकारियों की खड़ी कर लेंगे। बहुत दिनों तक उन्हें अंग्रेज लोग फँसाना चाहते थे अंत में अलीपुर बमकांड में उन्हें विचाराधीन कैदी बना ही दिया गया।

उस मामले में श्रीअरविन्द को जानबूझ कर फंसाया गया था। 1908-09 में वह अलीपुर जेल में बंद रहे और उन्हें वहाँ पर आप लोगों जैसे ही अच्छा नहीं लगा परन्तु उन्होंने अपने अंदर प्रश्न किया कि किस गलती से उन्हें वहाँ पर लाया गया तो जबाव भी मिला कि कुछ समय पूर्व से उनमें एक आध्यात्मिक वृत्ति आ रही थी जिसे उन्होंने अनसुना कर दिया। अब हम पूरी घटना की चर्चा करते हुए इसे बताने का प्रयास करेंगे जिससे उनके जेल के जीवन से आप लोगों को प्रेरणा मिलेगी।

अलीपुर जेल में उनको कष्ट हुआ लेकिन धीरे-धीरे उन्होंने योगाभ्यास किया और परिणाम यह हुआ कि सारे जेल अधिकारियों की मनोवृत्ति उनके प्रति एक अच्छी भावना में बदल गई । जेल के अंदर ही उन्हें भगवान कृष्ण के दर्शन हुए एवं उन्होंने उन्हें गीता का संदेश दिया। आपको याद ही होगा कि भागवान कृष्ण ने कुरुक्षेत्र में अर्जुन को गीता का संदेश दिया था जो आज भी सारी मानव जाति के उत्थान के लिए कितना आवश्यक है। एवं स्वामी विवेकानन्द की वाणी उन्हें लगभग दो हफ्ते तक सुनाई पड़ी जिसमें वेदान्त की बात थी। (ध्यान रहे कि स्वामी विवेकानन्द ने 1902 में अपने शरीर को छोड़ दिया था) धीरे-धीरे उन्हें जेल के अंदर कैदियों के रूप में भगवान कृष्ण नज़र आने लगे एवं पेड़ पौधों की डालियाँ वासुदेव की भुजाएँ लगने लगीं। जब कोर्ट में ट्रायल हुआ तो वहाँ पर भी सभी लोगों में वासुदेव के दर्शन होने लगे । वे कार्ट से निर्दोष साबित हुए परंतु जेल के जीवन में उनकी साधना ने उनके आध्यात्मिक उन्नयन में बड़ा सहयोग किया।

आज हम इस घटना से प्रेरणा ले सकते हैं और आपको यह चिंतन करना होगा कि हम यदि यहाँ पर आए हैं तो क्यों और क्या जो गलतियाँ हुई थी उससे हम बच सकते थे? हमें यह भी सोचना है कि जो विपरीत परिस्थितियाँ हमारे सामने हैं उससे हम कैसे उपयोग करके अपना सुधार कर सकते हैं (Difficulties should be taken as opportunities), अपने को बेहतर इंसान बना सकते हैं हमे अपने को कोसना नहीं चाहिए बल्कि आगे उत्थान हेतु प्रयास करना चाहिए। आपका आज कैदी भाईयों का परिवार है आप सब को यहाँ पर विभिन्न कार्य भी मिले होंगे अगर उन कार्यों को आप आपसी सहयोग करने का अभ्यास करते हुए करेंगे तो निश्चित रूप से सहयोग की भावना बढ़ेगी एवं आने वाले समय में आप बेहतर इंसान

बनेंगे। कार्य करते समय इस बात का ध्यान रखें कि यह कार्य हम भगवान के लिए कर रहे हैं क्योंकि हमें यह समझना चाहिए कि यह पूरा जगत भगवान की ही अभिव्यक्ति है।

अत: कार्य करते समय हम हर समय भगवान को ही याद रखें तो धीरे-धीरे इस समर्पण की भावना से आप प्रभु के एक बहुत अच्छे यंत्र बन जाएँगे। यहाँ भगवान से तात्पर्य ऐसी सत्ता से कर रहे हैं जो सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वकालिक एवं सर्वशक्तिमान है। आप चाहे जो भी नाम से पुकारें वह शक्ति आप की पल-पल पर मदद करेगी। धीरे-धीरे यह आपको अनुभव में आने लगेगा। इस दृष्टि से अगर आप इस समय का सदुपयोग करेंगे तो यह यातना गृह नहीं सुधार गृह हो जाएगा और आप जेल के बाहर एक नए रूप में निकलेंगे।

यदि आप लोकमान्य तिलक को याद करें तो उन्होंने जेल के अंदर 'तिलक गीता' लिखी जो आज भी बहुमूल्य धरोहर है। यदि हम संक्षेप में कहें तो यही मेरा निवेदन है कि यह समय ब्रह्म -मुहूर्त का समय है एवं पृथ्वी पर एक नई चेतना का अवतरण हो चुका है और इस समय को इस परिस्थितियों में रहते हुए हर काम परमात्मा को समर्पित करते हुए करें। मानव में ही सद्प्रवृतियाँ एवं दुष्प्रवृत्तियाँ रहती हैं। इस समय सद्प्रवृतियों का विकास यदि करेंगे तो निश्चित रुप से दुष्प्रवृत्तियाँ कम होती चली जाएँगी और आपको सार्थक जीवन जीने में मदद मिलेगी ।

पुनर्जन्म का महत्त्व

- श्रीअरविन्द

पुनर्जन्म के विषय में ऐसे कथन या विचार भी हैं जो जीवन के अधिक भावात्मक अर्थ को स्थान देते और उसके गुप्त स्रोत के रूप में सत्ता के बल पर आनन्द में अधिक तगड़ा विश्वास रखते है; परन्तु अन्त में वे सब के सब मनुष्य को सीमाओं और उसकी इस असमर्थता पर ठोकर खाते हैं कि उसे विश्व-व्यवस्था में इनके बन्धन में से बाहर निकलने का मार्ग नहीं दिखायी देता, क्योंकि वे इसे सनातन काल से निर्धारित वस्तु मानते है, शाश्वतीभ्यः समाभ्यः, चिरकाल विकासशील और सर्जनशील चक्र नहीं अपरिवर्तनशील चक्र। वैष्णवों का यह विचार कि यह ईश्वर की लीला है वस्तुओं के मर्म में रहनेवाले प्रच्छन्न आनन्द पर जा पहुँचता है और इस प्रकार रहस्य के अन्तस्थल में भेदन करने वाली एक ज्योतिर्मयी किरण है, परन्तु वह अकेला ही उसकी सारी गुत्थी को नहीं सुलझा सकता।

यहाँ जगत में प्रच्छन्न आनन्द की लीला के अतिरिक्त अधिक कुछ है; ज्ञान है, बल है, एक इच्छा और एक परिश्रम है । इस प्रकार देखने से पुनर्जन्म भगवान की एक मौज का रूप अत्यधिक ले लेता है जिसका लक्ष्य उसकी क्रीड़ा को छोड़ और कुछ न हो, परन्तु हमारा जगत् इतना अधिक बड़ा और श्रमपूर्ण है कि उसकी व्याख्या इस तरह नहीं की जा सकती। हमारी संभूति को जो उतार-चढ़ाव वाला आनन्द दिया जाता है, वह लुका-छिपी और खोज का खेल है, यहाँ उसकी किसी दिव्य संपूर्ति की आशा नहीं है; उसके वृत्त अन्त में यात्रा के योग्य नहीं लगते और जीव इस खेल की असन्तोषप्रद भूलभूलैयों में से मुक्ति पाने की ओर ही प्रसन्नता से मुड़ता है।

तान्त्रिक समाधान हमें एक परमा-अतिचेतन ऊर्जा की बात कहता है जो यहाँ बहुसंख्यक जगतों और कोटि संख्यक भूतों में अपने-आपको डालती है और उसकी व्यवस्था में जीव जन्म-जन्मांतर में उठता जाता है और उसके लाखों रूपों का तब तक अनुसरण करता है, जब तक कि अन्त में वह मानवीय धाराक्रम में अपने स्वीय दिव्यत्व की चेतना तथा शक्तियों की ओर खुल न जाय और उनके द्वारा द्रुत आलोकीकरण से शाश्वत अतिचेतना की ओर वापस न चला जाय। अन्त में हमें एक सन्तोषप्रद समन्वय का आरम्भ, अस्तित्त्व का कुछ औचित्य, पुनर्जन्म में एक अर्थपूर्ण परिणाम, विश्व की महान् गतिधारा

के लिए एक उपयोग और एक अस्थायी ही सही, परन्तु पर्याप्त सार्थक्य मिलता है। आधुनिक मन जब पुनर्जन्म को स्वीकार करने की ओर झुकता है तो वह पुनर्जन्म को बहुत कुछ इन जैसी ही रेखाओं पर देखना चाहता है। परन्तु यहाँ जीव की दिव्य सम्भावनाओं पर बहुत ही हल्का जोर दिया गया है, यहाँ से बच निकलकर अतिचेतना में पहुँचने के आग्रह में उतावली बरती गयी है; इतने संक्षिप्त और इतने अपर्याप्त प्रस्फुटन के लिए परमा ऊर्जा लम्बी और दीर्घकाय तैयारी की रचना करती है। यहाँ कोई रिक्त स्थल है, कोई रहस्य अभी भी अज्ञात है ।

हमारे अपने विचार की कुछ सीमाएँ हैं जिन पर ये सारे समाधान ठोकर खाते हैं, और इन बाधाओं में प्रमुख हैं हमारी विश्व के यान्त्रिक स्वरूप को भावना और अपने वर्तमान मानवीय प्रारूप से श्रेष्ठतर प्रारूप की ओर आगे देख पाने में हमारी अक्षमता। हम अति-चेतन आत्मा को उसकी दीप्ति और स्वतन्त्रता में देखते हैं और विश्व को उसके यान्त्रिक पुनरावर्तनों के चक्र के निश्चेतन बन्धन में, या हम अस्तित्व को अमूर्त सत्ता और प्रकृति को यान्त्रिक शक्ति की तरह देखते हैं; चेतन अन्तरात्मा इन दोनों विपरीतों के बीच कड़ी की तरह होता है, परन्तु स्वयं वह इतना असम्पूर्ण है कि हमें इस कड़ी में वह रहस्य नहीं मिल सकता, न ही हम उसे समन्वयन के सबल स्वामी के रूप में अपना सकते हैं। तब हम जन्म को अन्तरात्मा की भूल घोषित करते हैं और अपनी मुक्ति का एकमात्र सुयोग इन जन्मजात बन्धनों को उतार फेंकने और विश्वातीत चेतना की ओर या अमूर्त सत्ता को स्वतन्त्रता की ओर उग्र अत्क्रमण में देखते हैं।

परन्तु यदि पुनर्जन्म सचमुच कोई लम्बी घसीटती जंजीर न रहकर बल्कि आरम्भ में अन्तरात्मा के आरोहण का सोपान हो और अन्त में महान् आध्यात्मिक अवसरों का अनुक्रम, तो क्या होगा? और, पुनर्जन्म का तथ्य ऐसा ही होगा यदि अनन्त सत्ता वैसी न हो जैसी वह तार्किक बुद्धि को लगती है, यदि वह अमूर्त सत्ता न हो प्रत्युत् वैसी हो जैसी वह संबोधि की ओर गंभीरतर आध्यात्मिक अनुभव में दिखती है, यदि वह आध्यात्मिक चिन्मयी सद्वस्तु हो और वह सद्वस्तु यहाँ भी उतनी ही वास्तव हो जितनी किसी भी सुदूर अतिचेतना में। कारण, तब विश्वप्रकृति कोई ऐसा यन्त्र-विन्यास नहीं रह जायगी जिसका अपनी निश्चेतन यन्त्र-विधि को छोड़कर कोई और रहस्य न हो और जिसमें अपनी पुनरावर्त्ति का क्रियावत्ता को छोड़कर कोई और अभिप्राय न हो; वह तब अपनी प्रक्रियाओं की महिमा में महिमानम् अस्य-छिपे विश्वात्मा की चेतन ऊर्जा होगी।

और, जड़तत्व की निद्रा में से, वनस्पति और पशु- जीवन में से होकर जीवन-शक्ति की मानवीय कोटि में ऊपर उठता हुआ और वहाँ अपने शाही और अनन्त राज्य पर अधिकार करने के लिए अज्ञान और सीमा से लोहा लेता हुआ अन्तरात्मा वह मध्यस्थ होगा जो प्रकृति की सूक्ष्मताओं और वृहत्ताओं में छिपे अध्यात्मतत्व को प्रकृति में प्रस्फुटित करने के लिए नियुक्त हुआ है। यही जीवन तथा जगत् का सार्थक्य है जिसे क्रमवैकासिक पुनर्जन्म का विचार हमारे सामने खोलता है; जीवन तब तत्काल ही 'अध्यात्म तत्व' के प्रस्फुटन के लिए प्रगतिशील ऊर्ध्वमुख धाराक्रम हो जाता है। वह परम सार्थक्य से युक्त हो जाता है। उसके शक्तिरूप में अध्यात्म-तत्व की रीति का औचित्य प्रमाणित होता है, वह तब कोई बुद्धिहीन और खोखला स्वप्न, कोई शाश्वत उन्माद , महत् यान्त्रिक श्रम या अन्तहीन व्यर्थता नहीं रह जाता, वरन् एक विशाल आध्यात्मिक इच्छा एवं प्रज्ञा के कार्यों का जोड़ हो जाता है: मानव-अन्तरात्मा और विश्वात्मा एक उदात्त और दिव्य अर्थ से एक दूसरे की आँखों में देखते हैं।

हमारे अस्तित्व को घेरने वाले प्रश्नों की व्याख्या अब तुरन्त ही एक निश्चित सन्तोषप्रद परिपूर्णता से हो जाती है। हम तो विश्वातीत आत्मा तथा पुरुष का वह अन्तरात्मा ही जो अपने-आपको विश्व में सतत क्रम वैकासिक शरीर धारण में प्रस्फुटित कर रहा है जिसका शारीरिक रूप आकार का एक पादपीठ मात्र है जो अपने विकासक्रम में अध्यात्म की ऊपर उठती कोटियों के समकक्ष होता है, परन्तु यथार्थ भाव और प्रेरक हेतु आध्यात्मिकवर्द्धन ही होता है। हमारे पीछे हैं आध्यात्मिक विकासक्रम के अतीत के सत्र, अध्यात्मतत्व की ऊपर उठती श्रेणियाँ जिनका आरोहण किया जा चुका है, जिनसे हम निरन्तर पुनर्जन्म द्वारा विकसित होते हुए वह हो गये हैं जो हम हैं, और अभी भी आरोहण के इस वर्तमान और बीच के मानवीय सत्र का विकास कर रहे हैं। उस प्रस्फुटन के वैश्व रूप की सतत प्रक्रिया ही हमारे चारों ओर है: भूतकाल के सत्र उसमें समाए हुए हैं, परिपूरित हुए हैं, हमारे द्वारा उनका अतिक्रमण हुआ है, परन्तु सर्वसामान्य और विविध प्रारूप में वे तब भी आधार तथा पृष्ठभूमि की तरह पुनरावृत्त होता है; वर्तमान सत्र वहाँ अलाभदायी पुनरावर्तन की तरह नहीं, वरन् जो कुछ भी अतीत के तत्व द्वारा प्रस्फुटित

किया जाना है उसकी सक्रिय गर्भावस्था की तरह हैं, सर्वदा अंकों को असहाय रूप से पुनरावृत्त करते अयोक्तिक दशामालविक पुनरावर्तन की तरह नहीं, वरन् 'अनन्त' की शक्तियों के विस्तृत होते धाराक्रम की तरह। हमारे सामने है महत्तर शक्यताएं, वे सोपान जिन पर हम अभी तक चढ़े नहीं है, वे साश्वत-तर अभिव्यक्तियाँ जो अभिप्रेत है।

अध्यात्म-तत्व के ऊर्ध्वमुख आत्म-प्रस्फुटन का यह साधन होना ही हमारे यहाँ होने का कारण है। अपने प्रति और अपने सार्थक्यों के प्रति हमारा कर्त्तव्य है विकसित होना और उन्हें दिव्य सत्ता, दिव्य चेतना, दिव्य शक्ति, दिव्य आनन्द तथा बहुगुणित एकत्व के महत्तर सार्थक्यों की ओर उन्मीलित करना, और अपने परिवेश के प्रति हमारा कर्त्तव्य है उसे आध्यात्मिक हेतुओं के लिए चेतन रूप से प्रयुक्त करना और विश्व में भगवान् के पूर्ण स्वरूप और आत्म-कल्पना के आदर्श प्रस्फुटन के लिए उसे अधिकाधिक एक साँचा बनाना। अवश्य ही यही वस्तुओं के अन्दर रहने वाली वह इच्छा है जो अपनी ही सान्स आकृतियों को अपनी ही अनन्त 'सद्वस्तु' से अधिकाधिक अनुगर्भित करने की ओर महान् और सज्ञान, धीर और अविश्वामशील रहती हुई, किन्हीं भी चक्रों से होकर बढ़ती है।

यह सब वर्तमान की आकृतियों में रहने वाले मन के लिए, जैसा कि प्रत्यक्षवादी अनुसंधान में सलग्न सतर्क संशयात्मक मन के लिए होना ही चाहिए, प्रभ्युपगम से अधिक कुछ नहीं, क्योंकि क्रमविकास यदि स्वीकृत विचार है तो भी पुनर्जन्म तो अनुमान मात्र है।

ऐसा मानने पर भी यह उन सरल और बालोचित धार्मिक समाधानों से बेहतर अभ्युपगम है जो जगत् को एक सर्वशक्तिमान् मानवीय मनोधर्मी स्रष्टा की मनमौज और मनुष्य को उसकी श्वास लेती मिट्टी की कठपुतली बना देते हैं और, कम से कम, उस विचार के जितना अच्छा अभ्युपगम है जिसके अनुसार एक जड़ और नश्चेतन शक्ति चेतना के अनिश्चित और क्षणभंगुर, फिर भी अविच्छिन्न व्यापार में किसी भाँति संयोग से पहुँच गयी है, या जैसा कि बगंसन का सिद्धान्त है, एक सृजनशील प्राण विश्वव्यापिनी मृत्यु के बीच उत्पीड़ित होकर परिश्रम कर रहा है, परन्तु सतत विद्यमान है, या उस विचार के जितना अच्छा है जिसके अनुसार प्रकृति, माया या शक्ति की यान्त्रिक क्रिया हो रही है और वास्तविक या अवास्तविक व्यक्ति उसमें या उसके भीतर संयोग से पहुँच जाता या अन्धे के द्वारा ले जाये जाते अन्धे की तरह तब तक भटकता रहता है, दन्द्रम्यमाण: अन्धेनैव नीयमानो यथान्धः, जब तक कि वह आध्यात्मिक मुक्ति द्वारा उसमें से बाहर न निकल सके।

असंकीर्ण दार्शनिक जिज्ञासा को यह बात अस्तित्व की ज्ञात रेखाओं से बेमेल नहीं लगेगी, सत्ता के तथ्यों तथा आवश्यकताओं या युक्तिबुद्धि और संबोधि की माँगों से विस्वर नहीं लगेगी, भले ही वह एक ऐसे तत्व को मानना है जो अब तक अनुपलब्ध है, ऐसी वस्तुओं को मानना है जिन्हें अभी भी होना बाकी है, क्योंकि यह बात विकासक्रम के तो विचार में ही अन्तर्निहित रहती है।

यह बात धार्मिक अनुभव या अभीप्सा में कुछ परिवर्तन ला सकती है, किन्तु उनमें किसी का भी आमूल प्रत्याख्यान नहीं करती, क्योंकि वह न तो स्वर्गलोक में अतिचेतना अथवा आनन्द के साथ ऐक्य होने से, न भगवान् के साथ किसी व्यक्ति अथवा निर्व्यक्तिक सम्बन्ध होने से असंगत है, क्योंकि ये चीजें आध्यात्मिक प्रस्फुटन की चोटियाँ भलीभाँति हो सकती हैं। इसका सत्य निर्भर करेगा आध्यात्मिक अनुभव तथा कार्यान्वयन पर, किन्तु मुख्यतः इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर, "क्या मनुष्य की आन्तरात्मिक क्षमताओं में कोई ऐसी वस्तु है जो उसकी सत्ता के लिए वर्तमान मनःशक्ति से महत्तर किसी अन्य तत्व की आशा देती है और क्या उन महत्तर तत्व को उसके शरीरी जीवन के लिए प्रभावी बनाया जा सकता है?"

यही वह प्रश्न है जिसे मनोवैज्ञानिक समीक्षा से जाँचना बाकी रह गया है, यही वह समस्या है जिसे मनुष्य के आध्यात्मिक क्रमविकास के दौरान सुलझाना है।

इस प्रकार की क्रमवैकासिकी अभिव्यक्ति की दार्शनिक आवश्यकता, सम्भावना और सुनिश्चित वास्तविकता के अतितात्विक प्रश्न भी है, किन्तु उन्हें यहाँ और अभी लाने की आवश्यकता नहीं है। इस समय पुनर्जन्म से हमारा सम्बन्ध केवल अनुभव के सन्दर्भ में उसकी वास्तविकता और उसके धारावाहिक सार्थक्य से, इस स्पष्ट वास्तविकता से है कि हम किसी प्रकार की अभिव्यक्ति के अंग हैं और किसी प्रकार के क्रमविकास के चाप के नीचे आगे बढ़ रहे हैं। हमें एक शक्ति क्रियारत दिखती है और हम यह जानना चाहते हैं कि उस शक्ति में कोई सचेतन इच्छा, कोई व्यवस्थित विकास है या नहीं, और हमें पहले यह खोजना होता है कि यह किसी संगठित यदृच्छा या निश्चेतन स्व-बाधित अन्धे विधान का परिणाम है या कि विश्वव्यापी बुद्धि या प्रज्ञा की योजना।

एक बार जब हम यह देख लेते हैं कि एक चिदात्मा है और यह गतिधारा उसकी एक अभिव्यंजना है, या यदि हम इसे अपने कार्यकारी अनुमान के रुप में भी स्वीकार कर लेते हैं, तो हम आगे बढ़ने और यह पूछने को बाध्य होते हैं कि क्या यह विकसित होता क्रम मनुष्य की वर्तमान अवस्था पर समाप्त हो जाता है, या कि उसके गर्भ में और कुछ भी है जिसकी ओर इस क्रम और मनुष्य को बढ़ना है, जो एक असमाप्त प्राकट्य है, एक महत्तर अप्राप्त पर्व है, और ऐसा हो तो यह स्पष्ट है कि मनुष्य उसी महत्तर वस्तु की ओर ही बढ़ रहा होगा; उसकी तैयारी और उसकी उपलब्धि ही उसकी नियति में आगे आनेवाला चरण होगी।

क्रमविकास के उस नये डग की ओर ही उसका जातीय इतिहास अवचेतन रूप से प्रवृत्त हो रहा होगा और श्रेष्ठतम व्यक्तियों की क्षमताएँ इस महत्तर जन्म को सम्पन्न करने के लिए ही अर्ध-चेतन रूप से उद्योग कर रही होंगी; और चूंकि पुनर्जन्म का ऊर्ध्वमुख क्रम सदा ही क्रमविकास की श्रेणियों का अनुसरण करता है, उसके लिए भी यह अभिप्रेत नहीं हो सकता कि वह अभीष्ट डग की ओर कोई ध्यान न देकर रुक जाय या अकस्मात् मुड़कर अतिचेतना में चला जाय।

चेतना के अन्य स्तरों पर जो जीवन है उसके साथ और जो कोई भी विश्वातीत अतिचेतना हो उसके साथ हमारे जन्म के सम्बन्ध के विषय की समस्याएँ महत्वपूर्ण हैं, परन्तु उनका समाधान अवश्य ही ऐसा कुछ होना चाहिये जिसका विश्वगत 'अध्यात्म-पुरुष' के अभिप्राय से सामंजस्य हो; सब कुछ को एक एकत्व का अंग होना चाहिये, न कि आध्यात्मिक असम्बद्धताओं और अंसगतियों की उलझन। इस विचारधारा में ज्ञात से अज्ञात की ओर हमारा पहला सेतु यही अविष्कार होगा कि क्रमविकास का अभी तक असमाप्त रहने वाला सोपान पार्थिव धाराक्रम में कितनी दूर तक ऊपर जा सकता है।

इस आविष्कार का अभी तक प्रयत्न नहीं किया गया है, किन्तु हो सकता है कि पुनर्जन्म का सारा धारावाहिक सार्थक्य इसी एक बात में लिपटा पड़ा हो।

"हे प्रभु, सत्य चेतना एवं शान्ति की हममें निरन्तर वृद्धि होने दो, जिससे हम आपके एकमेव दिव्य नियम के विश्वसनीय माध्यम बन सकें। हममें ऐसा कुछ भी शेष न रहे, जो आपके कार्य को धूमिल कर सके।"

-श्रीमाँ

त्रिविध जीवन

-श्रीअरविन्द

उच्चतम जीवन अर्थात आध्यात्मिक जीवन सनातन सत्ता के साथ संबंध अवश्य रखता है किंतु इस कारण वह क्षणिका सत्ता से पूर्णतया अलग नहीं है। आध्यात्मिक मनुष्य के लिए मन का पूर्ण सौंदर्य संबंधी स्वप्न एक ऐसे सनातन प्रेम, सौंदर्य और आनंद में चरितार्थ होता है जो किसी पर निर्भर नहीं है तथा जो समस्त दृश्यमान प्रतीतियों के पीछे समान रूप से स्थित है; पूर्ण सत्य-संबंधी स्वप्न उस सर्वोच्च, स्वयं-स्थित, स्वयं-प्रत्यक्ष और सनातन सत्य में चरितार्थ होता है जो कभी परिवर्तित नहीं होता बल्कि जो समस्त परिवर्तनों की ओर समस्त उन्नति के लक्ष्य की व्याख्या करता है तथा उनका रहस्य है। उसका पूर्ण कर्म संबंधी स्वप्न उस सर्वशक्तिमान, अपना पथ-प्रदर्शन करनेवाले नियम में चरितार्थ होता है जो सदा समस्त वस्तुओं के अंदर निहित है और यहाँ जगतों की लयपूर्ण व्यवस्था में अपने आपको अनूदित करता है। आलोकपूर्ण 'सत्ता' में जो अस्थिर अंतर्दृष्टि है या सृष्टिसम्बन्धी सतत प्रयत्न है वह 'सत्ता' में सदा स्थिर रहनेवाली एक ऐसी सद्वस्तु है जो सब कुछ जानती है और सबकी स्वामिनी है।

किंतु यदि मानसिक जीवन अपने आपको स्थूल रूप से प्रतिरोधकारी भौतिक क्रिया के अनुकूल बनाने में बहुधा कठिनाई अनुभव करता है तो आध्यात्मिक जीवन के लिए एक ऐसे जगत में निवास करना कितना अधिक कठिन प्रतीत होगा जो 'सत्य' से नहीं बल्कि प्रत्येक झूठ और भ्रांति से, 'प्रेम' और 'सौंदर्य' से नहीं बल्कि सर्वग्रासी विरोध और कुरूपता से, 'सत्य' के नियम से नहीं बल्कि विजयी स्वार्थ और अधर्म से परिपूर्ण है। इसीलिए आध्यात्मिक जीवन अपनानेवाले संत या सन्यासी की सामान्य प्रवृत्ति भौतिक जीवन को त्यागने की तथा उसे पूर्णतया और भौतिक रूप से या आत्मिक रूप से अस्वीकार करने की होती है। वह इस संसार को तो 'अशुभ' या 'अज्ञान' का राज्य समझता है और सनातन एवं दिव्य सत्ता को या तो सुदूर स्वर्ग में या इस जगत और जीवन से परे देखता है। वह अपने आपको उस अपवित्रता से अलग कर लेता है; वह आध्यात्मिक सद्वस्तु का समर्थन विशुद्ध एकांत में करता है। उसका यह त्याग भौतिक जीवन की एक अमूल्य सेवा इस बात में करता है कि वह उसे उस वस्तु का आदर करने और उसके सामने सिर झुकाने के लिए बाध्य करता है जो उसके तुच्छ आदर्शों का और हीन चिंताओं और अहंभावयुक्त स्वतुष्टि का सीधा निषेध है।

किंतु संसार में आध्यात्मिक शक्ति जैसा सर्वोच्च शक्ति का कार्य इस प्रकार सीमित नहीं किया जा सकता। आध्यात्मिक जीवन भी भौतिक जीवन की ओर वापिस आकर अपनी महत्तर पूर्णता के लिए उसका एक साधन के रूप में प्रयोग कर सकता है। क्योंकि वह द्वंद्वों और बाह्य प्रतीतियों के द्वारा अंधा होना अस्वीकार कर देता है, वह सब बाह्य प्रतीतियों में, चाहे जो भी वे हों, उसी 'भगवान' की, उसी सनातन 'सत्य', सौंदर्य, 'प्रेम' और आनंद की छाया की खोज कर सकता है। समस्त वस्तुओं में उपस्थित 'सत्ता' का, 'सत्ता' में उपस्थित सब वस्तुओं का तथा 'सत्ता' की अभिव्यक्तियों के रूप में समस्त वस्तुओं का वैदान्तिक सूत्र इस अधिक समृद्ध और सबको अपने अंदर धारण करनेवाले योग की कुंजी है।

किंतु इस प्रकार, मानसिक जीवन की भाँति आध्यात्मिक जीवन मी व्यक्ति के लाभ के लिए इस बाह्य अस्तित्व का प्रयोग कर सकता है; इनमें वह ऐसे जगत के किसी भी सामूहिक उत्कर्ष की ओर से पूर्णतया उदासीन रह सकता है जो केवल एक प्रतीकमात्र है तथा जिसका वह प्रयोग करता है। क्योंकि सनातन सत्ता सदा सब वस्तुओं में एक ही रहती है और सब वस्तुएँ सनातन सत्ता के लिए भी वही रहती है, क्योंकि मनुष्य में उसी एक महान उपलब्धि की चरितार्थता की अपेक्षा कार्य करने के यथार्थ ढंग और परिणाम का महत्व बहुत ही कम है, यह आध्यात्मिक उदासीनता किसी भी वातावरण को, किसी भी कर्म को शांत भाव से स्वीकार कर लेती है, पर सर्वोच्च लक्ष्य के प्राप्त होते ही वह पीछे हटने के लिए भी तैयार हो जाती है। गीता के आदर्श को बहुतों ने इसी ढंग से समझा है। या फिर आंतरिक प्रेम और आनंद अच्छे कार्यों, सेवा और करुणा के रूप में अपने आपको संसार में उडेल सकते हैं और आंतरिक सत्य ज्ञान के रूप में अपने आपको संसार में उडेल सकता है; अतएव वे संसार को रूपांतरित करने की कोशिश नहीं करते, क्योंकि वह अपने अविच्छेद स्वभाव के कारण द्वंदों का, पाप और पुण्य का, सत्य और असत्य का तथा सुख और दु:ख का युद्ध- क्षेत्र ही बना रहता है।

किंतु यदि 'उन्नति' जागतिक जीवन के प्रधान तथ्यों में से एक है और भगवान की विकसनशील अभिव्यक्ति ही प्रकृति का सच्चा अर्थ है तो उन्नतिसंबंधी यह सीमा भी ठीक नहीं है। जगत में आध्यात्मिक जीवन के लिए यह संभव है कि वह भौतिक जीवन को अपने प्रतिरूप में, भगवान के प्रतिरूप में परिवर्तित कर दे, बल्कि यही उसका सच्चा कार्य है। इसीलिए, उन महान एकांतवासी योगियों को छोड़कर जिन्होंने अपनी मुक्ति की ही खोज की और उसे प्राप्त भी कर लिया कुछ ऐसे महान आध्यात्मिक गुरु भी हो चुके है जिन्होंने दूसरों को भी मुक्ति दिलाई है। इनसे भी अधिक ऊँची वे महान सक्रिय आत्माएँ हैं जो आत्मिक शक्ति में अपने आपको भौतिक जगत की सभी शक्तियों से अधिक सबल अनुभव करके एकत्रित हो गई हैं, इन्होंने भी संसार पर कार्य किया है, प्रेमपूर्ण सामुख्य में उसके साथ संघर्ष किया है, तथा उसे इस बात के लिए बाध्य करने की चेष्टा की है कि वह अपने रूपांतरण के लिए अपनी स्वीकृति दे।

साधारणतया मनुष्यजाति में मानसिक और नैतिक परिवर्तन लाने का प्रयत्न किया जाता है, किंतु इसका विस्तार हमारे जीवन के तथा उसके आचार- व्यवहारों के रूपों के परिवर्तन तक भी हो सकता है जिससे कि वे भी आत्मा के आंतरिक रस को ग्रहण करने के लिए अधिक उपयुक्त साँचे बन जाएँ । ये प्रयत्न मानवी आदर्शों की विकसनशील प्रगति तथा जाति की दिव्य तैयारी में सर्वोच्च संकेत रहे हैं। इनमें से प्रत्येक ने, उसके बाह्य परिणाम चाहे जो हों, पृथ्वी को स्वर्ग-प्राप्ति के अधिक योग्य बना दिया है तथा 'प्रकृति' के विकासात्मक 'योग' की मंद गति को द्रुत कर दिया है।

भारतवर्ष में, पिछले एक हज़ार या इससे अधिक वर्षो में आध्यात्मिक और भौतिक जीवन साथ-साथ चलते रहे है, इन्होंने मन के विकास की ओर ध्यान नहीं दिया। आध्यात्मिकता ने जड़पदार्थ के साथ यह समझौता कर लिया है कि वह सामान्य उन्नति साधित करने का प्रयोग छोड़ देगा। उसने समाज से उन सबके लिए स्वतंत्र आध्यात्मिक उन्नति का अधिकार प्राप्त कर लिया है जो एक विशेष प्रतीक अर्थात सन्यासी के वेश को अपना लेते हैं, उसने यह स्वीकार कर लिया है कि यही जीवन मनुष्य का लक्ष्य है और जो इसे अपनाते हैं वही पूर्ण सम्मान के योग्य हैं।

उसने समाज को एक ऐसे धार्मिक साँचे में ढाल दिया है कि उसके अत्यधिक अभ्यस्त कार्यों के साथ भी जीवन और उसके अंतिम लक्ष्य का आध्यात्मिक प्रतीक जुड़ा रहता है जिससे कि उसे इसकी याद बनी रहे। पर इसके विपरीत, समाज को अधिकार केवल तमस् और स्थिर आत्मरक्षा का ही मिला। इस छूट ने उन तथ्यों के महत्त्व को बहुत कुछ नष्ट कर दिया। जब धार्मिक साँचा नियत हो गया तो यह वैधिक ढंग से स्मरण दिलाने की रीति नित्यप्रति का क्रम हो गई और उसने अपना सजीव अर्थ खो दिया। नए मतों और धर्मो के द्वारा साँचे को बदलने के सतत प्रयत्न एक नये क्रम में अथवा पुराने क्रम के संशोधित रूप में समाप्त हो गए। कारण, मुक्त और सक्रिय मन का उद्धारक तत्त्व निर्वासित हो चुका था, क्योंकि स्थूल जीवन तब अज्ञान को, उद्देश्यहीन और अमिट द्वंद को सौंप दिया गया था। वह एक ऐसा बोझिल और दुःखदायी जुमा बन गया जिससे भागकर ही मनुष्य बच सकता था।

भारतीय योग की पद्धतियों ने तब स्वयं ही एक समझौता कर लिया। तब वैयक्तिक पूतणी या मुक्ति लक्ष्य बन गई और साधारण कर्मों से एक प्रकार का संबंध-विच्छेद शर्त बन गई और जीवन का त्याग अंतिम उपलब्धि हो गयी। गुरु अपना ज्ञान केवल कुछ शिष्यों को ही देता था। और यदि एक विस्तृत क्षेत्र में कार्य करने के लिए प्रयत्न किया भी गया तो भी लक्ष्य व्यक्तिगत आत्मा की मुक्ति ही रहा। अधिकतर तो एक रूढ़ समाज के साथ समझौता ही काम में लाया जाता था। उस वक्त जो संसार की वास्तविक दशा थी उसमें इस समझौते की उपयोगिता पर संदेह नहीं किया जा सकता। इसने भारतवर्ष में एक ऐसे समाज को सुरक्षित रखा जिसने आध्यात्मिकता की रक्षा एव पूजा की; यह एक ऐसा देश बना रहा जिसमें एक किले की भाँति सर्वोच्च आध्यात्मिक आदर्श अपनी अत्यधिक पूर्ण विशुद्धता के साथ अपने आपको बनाए रख सका, इस किले में वह अपने चारों ओर की शक्तियों के आक्रमण से सुरक्षित रहा। किंतु यह केवल एक समझौता था, एक पूर्ण विजय नहीं। परिणामस्वरूप, भौतिक जीवन ने विकाससंबंधी दिव्य प्रेरणा को खा लिया, आध्यात्मिक जीवन ने अलग रहकर अपनी उच्चता और विशुद्धता को सुरक्षित तो रखा पर संसार की वह जो सेवा कर सकता था उसका तथा अपनी पूर्ण शक्ति का उसे बलिदान करना पड़ा। अतएव, दिव्य भवितव्यता में योगियों और सन्यासियों के देश को ठीक उसी तत्त्व के साथ अपना दृढ़

और अनिवार्य संबंध बनाना पड़ा जिसे वह पहले अस्वीकार कर चुका था, यह विकसनशील मन का तत्त्व था। यह सब इसलिए करना पड़ा जिससे कि जो चीज़ उसके पास अब नहीं हैं उसे वह पुनः प्राप्त कर सके। हमें यह एक बार फिर स्वीकार करना पड़ेगा कि व्यक्ति केवल अपने अंदर ही नहीं बल्कि समूह में भी निवास करता है और यह कि वैयक्तिक पूर्णता और मुक्ति ही संसार में भगवान के अभिप्राय का समस्त अर्थ नहीं है। हमारी स्वाधीनता के स्वतंत्र प्रयोग में दूसरों की बल्कि मनुष्यमात्र की मुक्ति निहित है। अपने अंदर दिव्य प्रतीक को चरितार्थ करने के बाद, हमारी पूर्णता का प्रयोजन इसमें है कि हम इसे दूसरों में भी साधित करें, इसे बढ़ाएँ तथा अंत में इसे विश्वस्यापी बना दें।

यदि हम मानव जीवन को उसकी तीनों संभावनाओं सहित वास्तविक दृष्टिकोण से देखें तो हम ठीक उसी निष्कर्ष पर पहुँचते है जिसे हमने प्रकृति की सामान्य क्रियाओं तथा उसके विकास क्रम के तीनों पगों का निरीक्षण करने के बाद निकाला था और तभी हम अपने योगसंबंधी समन्वय के पूर्ण उद्देश्य को समझना आरम्भ करते हैं।

'आत्मा' वैश्व जीवन की उच्चतम चोटी है; 'जड़पदार्थ उसका आधार और 'मन' इन दोनों को जोड़नेवाला सूत्र है। 'आत्मा' सनातन वस्तु है और मन और जड़पदार्थ उसकी क्रियाएँ हैं। आत्मा वह वस्तु है जो छुपी हुई है और जिसे प्रकाश में लाना है, मन और शरीर वे साधन है जिनके द्वारा वह अपने आपको प्रकाश में लाने की चेष्टा करती है। आत्मा 'योग' के 'स्वामी' की प्रतिमूर्त्ति है; मन और शरीर वे साधन हैं जिन्हें उसने इस प्रतिमूर्त्ति को भौतिक जीवन में उत्पन्न करने के लिए हमें प्रदान किया है। समस्त प्रकृति इस छिपे हुए 'सत्य' को अधिकाधिक व्यक्त करने का एक प्रयत्न है, दिव्य प्रतिमूर्त्ति को एक अधिकाधिक सफल पुनरावृत्ति है।

किंतु जिस वस्तु को प्रकृति समुदाय के लिए एक धीमे विकास के द्वारा उत्पन्न करने की कोशिश करती है उसे 'योग' व्यक्ति के लिए एक द्रुत विकास के द्वारा साधित कर लेता है। वह उस की समस्त शक्तियों को वेग प्रदान करके और समस्त सामर्थ्य को ऊँचा उठाकर कार्य करता है। प्रकृति आध्यात्मिक जीवन को बड़ी कठिनाई से विकसित कर पाती है और इसमें उसे सदा अपनी निम्न उपलब्धियों की प्राप्ति के लिए निम्न स्तर पर आना पड़ता है, उधर योग की दिव्यता को प्राप्त शक्ति और केंद्रित प्रणाली सीधे ही मन की पूर्णता प्राप्त कर सकती है, बल्कि वह उसे अपने साथ ही ला सकती है। इतना ही नहीं; यदि उसे प्रकृति का सहयोग मिले तो वह शरीर की पूर्णता भी प्राप्त कर सकती है। प्रकृति भगवान को अपने प्रतीकों में खोजती है। योग 'प्रकृति' के स्वामी तक, विश्व आगे 'परात्पर सत्ता' तक जाता है और फिर परात्पर प्रकाश और परात्पर शक्ति सहित सर्वशक्तिमान भगवान के आदेश से वापिस भी लौट सकता है।

किंतु दोनों का उद्देश्य अंत में एक ही है। मनुष्यजाति में 'योग' को व्यापक बनाने का अर्थ यह है कि प्रकृति अपने विलंबों और रहस्यों पर अंतिम विजय प्राप्त कर ले। अभी तो वह विज्ञान के विकसनशील मन के द्वारा समस्त मनुष्य जाति को मानसिक जीवन के पूर्ण विकास के लिए तैयार करने की कोशिश करती हैं, इसी प्रकार योग के द्वारा उसे समस्त मनुष्यजाति को एक उच्चतर विकास के लिए, एक नए जन्म अर्थात आध्यात्मिक जीवन के लिए अनिवार्य रूप में समर्थ बनाने की कोशिश करनी चाहिए । जिस प्रकार मानसिक जीवन भौतिक जीवन का प्रयोग करके उसे पूर्ण बनाता है, उसी प्रकार आध्यात्मिक जीवन भी भौतिक और मानसिक जीवन का प्रयोग करके उन्हें पूर्ण बनाएगा, ये दिव्य आत्म अभिव्यक्ति के यत्न होंगे। जिन युगों में यह कार्य साधित होगा वे कथाओं में आनेवाले 'सत्य' और 'कृत' अर्थात प्रतीक के रूप में व्यक्त 'सत्य' के युग होंगे, ये उस महान कार्य के युग होंगे जबकि प्रकृतिमनुष्य जाति में प्रकाश, संतोष और आनंद से परिपूर्ण हो जाती है तथा अपने प्रयत्न के शिखर पर पहुँचकर वहीं विश्राम करती है।

अब मनुष्य को उसका प्रयोजन समझना है, उसे विश्व-माता को गलत समझना, उसकी उपेक्षा करना, उसका दुरुपयोग करना छोड़ देना है। उसे माता के उच्चतम आदर्श को प्राप्त करने के लिए उसी के सबलतम साधनों के द्वारा सदैव अभीप्सा करनी है।

श्रीअरविंद का रचना कर्म

पद्य

- श्री चरण सिंह केदारखंडी

(श्रीअरविंद की 150वीं जन्म जयंती पर श्री अरविंद आश्रम – दिल्ली शाखा ने 12, 13, एवं 14 अगस्त 2021 को त्रि-दिवसीय वेबिनार "संभावमी युगे यूगे" का आयोजन किया था। इस वेबिनर में 6 वक्ताओं ने अलग अलग विषयों पर अपने विचार रखे थे। इस वक्ताओं के वक्तव्यों को हम सिलसिलेवार पत्रिका में प्रकाशित कर रहे हैं। इसकी प्रथम कड़ी जनवरी-फरवरी 2022 के अंक में डॉ सुरेश चंद्र त्यागी का श्रीअरविंद का रचना कर्म, गद्य विषय पर वक्तव्य प्रकाशित हो चुकी है। इस अंक में है यह दूसरी कड़ी)

सर्वप्रथम मैं श्रीअरविंद एवं श्रीमाँ के चरणों में प्रणाम निवेदित करता हूँ कि श्रीअरविंद के 150वें जन्मदिवस पर, इस जन्मोत्सव पर एक बड़ा अवसर प्रारम्भ हो रहा है। इस मौके पर हमलोग, इस अंतर्राष्ट्रीय स्तर के अवसर पर, तृ-दिवसीय वेबिनर के बहाने यहाँ इकट्ठे हैं। मैं माँ भगवती से, श्रीअरविंद से इस कार्यक्रम को अपना आशीर्वाद प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ कि वे हमारी चेतना में रहें।

मैं श्री अरविंद हिन्दी क्षेत्रीय समिति के सभी पदाधिकारियों को, मैं श्री अरविंद आश्रम दिल्ली शाखा की वर्तमान संचालिका भगवती माँ की यंत्र, तारा दीदी को, डॉ.अर्पणा रॉय को, श्री अरविंद सोसाइटी के यहाँ उपस्थित सभी वरिष्ठ लोगों को, जीतने साधक हैं, आदरणीय त्यागी जी को भी नमन करता हूँ जिन्होंने एक तरह से मुझे आकृति-रूप दिया है। जब 2011 में मैं पहली बार पांडिचेरी गया तब मैंने जो कुछ भी लिखा था उसे मैंने एक तरफ रख दिया क्योंकि वहाँ मुझे यह देखने का मौका मिला कि वह एक दिव्य प्रयोगशाला थी। आश्रम को लेकर जो हमारी धारणायें थी वे सारी वहाँ खंडित हो जाती हैं, उसको बहुत विस्तार मिलता है कि पूरा का पूरा जीवन कैसे योग हो सकता है। कविता कैसे जीवन और जीवन कैसे कविता हो सकती है, यह वहाँ देखने को मिला। और निजी तौर पर, चूंकि श्री अरविंद न केवल स्वयं एक कवि हैं बल्कि वे कवि का निर्माण भी करते हैं। दिलीप कुमार रॉय ने अपनी पुस्तक "श्री अरविंद केम टु मी" (ShriArvind came to me) में उन्हें केवल एक कवि ही नहीं बल्कि एक कवि निर्माता (पोएट मेकर) भी कहा है, और गुरु (द अलकेमिस्ट) भी कहा है। जिसके पास जाकर हमारी मूलभूत मामूली स्वरूप सोने का हो जाए, और हमारी मामूली कविता जिसके हाथों में जाकर बड़ी कविता हो जाए, उदघाटन करने वाली कविता हो जाए, ऐसे कवि-निर्माता भी श्रीअरविंद थे। (02.00)

उन्हीं में एक, अमल किरण उस समय तक ज़िंदा थे जब मैं 26 जून 2011 को उनसे मिला था, आश्रम नर्सिंगहोम में। कई वर्षों से मैं यह आरजू, यह अभीप्सा, यह प्रार्थना कर रहा था कि चूंकि अमल किरण अभी जिंदा हैं, 1927 से पांडिचेरी में हैं, मैं उनसे मिलना चाहता हूँ और उनके साथ का वह बड़ा भावुक पल था। उसके तीन दिन बाद उनकी मौत हुई, श्रीमाँ ने एक मौका दिया। मुझे बहुत बार लगा कि श्रीमाँ ने मेरे लिए ही उन्हें बचा रखा था, उनकी श्वासें रखी हुई थीं। यह एक बहुत सारा संस्मरण दिल्ली आश्रम की पत्रिका कर्मधारा में छपा और उसे पढ़ कर ही त्यागीजी ने मुझ से संपर्क किया और मेरे लिए बहुत सा साहित्य भेजा। नोएडा में मार्च 15-16, 2013 को शायद जो सम्मेलन 2013 में हुआ था उसके लिए भी उन्होंने ही मुझे प्रेरित किया था। आज चूंकि दिल्ली आश्रम के अलमस्त फकीर, चाचाजी का भी जन्म दिन है और सावित्री की तैंतालीस पृष्ठ पर जो पंक्तियाँ आती हैं .....,

इस तरह की जो उन्होंने साधना की, तपस्या की और कागज पर कविता न लिखकर कर्म की एक कविता लिखी। जौहर साहब का खुद का एक बहुत सुंदर संस्मरण है "My Mother (मेरी माँ)" जिनमें लगभग सौ किस्से श्रीमाँ, उनके

परिवार, उनके जीवन और कैसे वे श्रीमाँ की ऑरा में आए, उससे संबन्धित हैं। उसी में एक जगह वे कहते हैं, "मैं श्री अरविंद का, किताबों की दृष्टि से श्रीअरविंद की सबसे पतली किताब मानी जाती है, अलग से छः निबंध प्रकाशित हुए थे "The Mother" के नाम से, वे जीवन भर मेरे सिरहाने रहे लेकिन मैं उनको भी पूरा नहीं पढ़ पाया। तो जौहर साहब का जीवन अपने आप में एक प्रमाण है, एक साक्ष्य है हम सब के लिए। वस्तुतः श्रीअरविंद को इस तरह बिना पढे भी कोई उनके कर्म को उनके योग को उनके जीवन को दिव्य धरती की उनकी प्रयोगशाला को जमीन पर उतार सकने में एक बहुत बड़ा बल, यंत्र हो सकता है। जो कविता की, कागज की कविता न लिखने वाले, कर्म की कविता लिखने वाले व्यक्ति, उनको भी नमन है, वंदन है, उनका भावपूर्ण स्मरण है। (04.40)

साथियों "संभावमि युगे युगे" यह भगवान श्रीकृष्ण का एक बहुत बड़ा वादा है,

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥4.8 ॥

इसी वायदे की अनुगूँज सावित्री में भी श्रीअरविंद ने दी है, इस वादे को एक तरह से वापस दोहराया है। "O surely one day ....."(5.05) और इन प्रसव वेदना के पलों में जब यह पूरी सृष्टि एक चौराहे पर है, धार्मिक रूप से, आध्यात्मिक रूप से, राजनीतिक रूप से, वैचारिक रूप से, अस्ततोगत सवालों से जूझ रही है तो यह हमारी वही वेदना का रूदन ही तो है। इस तरह के मंथन से, इस तरह के चिंतन से, इस तरह की साधना से हम जरूर श्रीअरविंद के नजदीक जाएँ और श्रीअरविंद की चेतना हम सबों के भीतर उतरे। "O surely one day ....."। एक दिन ऐसा आयेगा जब वे हमारे जीवन को नये सिरे से सृजित करेंगे। "And an utter formula of peace ....." (5.56) और जब शांति का, सहृदयता का उस निश्छ्ल नीरवता का जिसका हम सबों को इंतजार है, अपने ध्यान से, अपनी कविताओं से, संगीत से, अपनी रूमानियत से, अपने अध्ययन से, चिंतन से, उस परम शांति का जो जादुई सूत्र है उसे जरूर प्रकट करेंगे। "And bring perfection to ....." (6.18)। आज जो आड़ा तिरछा है, आज जैसा जो है वैसा करने में, चीजों को तराशने में, जरूर हमको पूर्णता की ओर ले जाएंगे। वायदा है प्रभु का, यह वायदा है श्रीअरविंद का।

श्रीअरविंद की कविता पढ़ना अच्छा है, श्रीअरविंद की कविता की विशाल ऑरा में जाना अच्छा है, लेकिन उससे लाख गुना अच्छा है जीवन को ही एक कविता बनाया जाए। अपनी किताब 'Essays and Divine' में श्रीअरविंद ने कहा "your life on the earth ....." (6.59) धरती पर तुम्हारा जीवन एक दिव्य कविता है जिसे तुम मानवीय भाषा में अनूदित कर रहे हो, सांसारिक भाषा में अनूदित कर रहे हो। यह संगीत की एक ऐसी तान है जिसे तुम शब्दों का रूप देना चाह रहे हो। श्रीअरविंद को पढ़ना उनको जानना, उनका विमर्श करना, सब कुछ श्रीअरविंद के करीब जाने का बहाना है। इस संध्या का साँचा भी बहुत छोटा है, हमारा चिंतन, हमारा दर्शन, हमारा अध्ययन, और सबसे बड़ी चीज हमारी साधना बहुत कम है। हम अ-पात्र हैं लेकिन जैसे एक पिता, एक माँ अपने बच्चे के दोष को कबूल कर लेती है, स्वीकार कर लेती है, सुधारती है, पुचकारती है, यही तारीका श्रीअरविंद का रहा है और जो भी भूल-चूक इसमें होंगी, इस छोटे से विमर्श में, वे हमें जरूर उसी ईश्वरीय अनुकंपा से, ईश्वरीय स्नेह से, ईश्वरीय आनंद से नज़र अंदाज़ करेंगे। (8.10)। साथियों आप खुद सोचिए कि क्या वजह है कि भारत में इतनी बढ़िया अँग्रेजी लिखने वाले, इतनी बढ़िया अँग्रेजी में काम करने वाले लोग थे और क्या वजह है कि अभी भी अँग्रेजी में इतना बढ़िया महाकाव्य कोई नहीं लिख पाया? हिन्दी में भी जिन लोगों ने महाकाव्य लिखा है उनकी संख्या आधे दर्जन लोगों से ज्यादा नहीं है।

आखिरकार ऐसा क्या है महाकाव्य में? यह जो एक बड़ी प्रचंड साधना है और जिसके लिए हर कोई हिम्मत नहीं कर सकता। नॉवेल विजेता होने के बाद, माँ भारती के एक बहुत बड़े साहित्यिक, सामाजिक हस्ताक्षर होने के बावजूद आप सब जानते है, ठाकुर रवीन्द्रनाथ टैगोर तक ने महाकाव्य का कोई प्रयास नहीं किया। उनकी सबसे प्रचलित किताब "गीतांजली" एक काव्यात्मक कविता है और ये वे रवीन्द्रनाथ हैं जो अपने से दस साल छोटे, यह उनके व्यक्तित्व की ऊंचाई है, कि वे उनको नमस्कार करते हैं, और एक उद्घाटन करते हैं, एक भविष्यवाणी करते हैं कि एक दिन भारत अपने आप को तुम्हारी

वाणी से अभिव्यक्त करेगा। एक दिन अगर भारत को समझना होगा तो लोग श्रीअरविंद को समझेंगे। श्रीअरविंद को पढ़ पर लोग भारत को जानेंगे, भारत की ऑरा में प्रवेश करेंगे। जब हम श्रीअरविंद की कविता की बात कर रहे हैं तो हमें उनके दो अन्य आयामों को भी जरूर याद रखना चाहिए जो उसमें शामिल हैं। श्रीअरविंद सिर्फ कवि नहीं हैं, श्रीअरविंद एक ऋषि भी हैं। श्रीअरविंद एक योगी भी हैं। बहुत मुश्किल है श्रीअरविंद के कवि और ऋषि और योगी के रूप को अलग-अलग देखना। योगी कौन है? जहां तक मैंने पढ़ा है श्रीअरविंद ने "Letters of Yogi" में एक जगह लिखा है "योगी वह व्यक्ति है जो भगवान में प्रतिष्ठित हो गया है।" (10.11) उसे अब निजी तौर पर और यात्रा करने की जरूरत नहीं, उसे और कहीं जाने की आवश्यकता नहीं, उसे अपने लिए पाने के लिए और कुछ करने की जरूरत नहीं है। जो रास्ते पर है वह साधक है, लेकिन जो प्रतिष्ठित हो गया वह योगी है। वह उसी समग्रता के साथ, वह उसी विस्तार के साथ उसकी व्याख्या भी करेगा और चीजों को देखेगा भी।

फिर कवि कौन है? हमारे देश में, दुनिया में कवियों ने तो इतना शोर कर रखा है कि गली-गली में कवि हैं। लेकिन श्रीअरविंद की दृष्टि से देखें तो वे कवि नहीं हैं वे केवल कविता लिखने वाले हैं। अब एक कविता लिखने वाले में और कवि में अंतर क्या है? कवि हिन्दी का शब्द नहीं है, संस्कृत का शब्द है। श्रीअरविंद ने कवि की तीन पहचान बताई है जिसमें तीन यंत्र हों। सबसे पहले उसमें भावनात्मक सच्चाई हो। यानि, कवि जिस चीज की वकालत अपनी कविता में कर रहा हो निजी रूप से भी उसके प्रति उसकी हमदर्दी हो और निजी रूप से भी वह वैसा ही जीवन जीता हो और उसकी भावनात्मक स्तर पर उससे एकात्मता हो। उसके बाद दूसरा यंत्र - भाषा पर पूरा अधिकार और निपुणता हो, पूर्ण नियंत्रण हो।

भाषा के जितने भी तुक, ताल, प्रकृति, स्वभाव, स्वरूप हैं, भाषा के जीतने भी उदात्त प्रकृति हैं, उन सब का ज्ञान हो। क्योंकि साहित्य तो भाषा का सर्वोच्च कक्ष है एक तरह से। भाषा तो खिचड़ी, बोलचाल, साधारण हर तरह की होती है, लेकिन साहित्य की भाषा आलीशान होती है, तेजस्वी होती है, उदात्त होती है। तीसरी बात जो बहुत जरूरी है जो किसी सामान्य लेखक को, कविता लिखने वाले को कवि बनती है या जिसके अभाव में वह एक कवि न होकर महज एक तुकांत कविता करने लगता है, टुक्कड़ बाजी करता है, वह है प्रेरणा का स्रोत, प्रेरणा की शक्ति। भागवत प्रेरणा का स्रोत। ये तीन अवयव मिल कर एक व्यक्ति को कवि बनाते हैं।

अब ऋषि कौन है? ऋषि को भी श्रीअरविंद ने "Letters on Yoga" में "Poetry, Art & Literature" में एक जगह लिखा 'ऋषि वह है जो सत्य का साक्षात्कार करता है। और उस सत्य की खोज करके, स्व-प्रभावी भाषा में संसार के सामने प्रस्तुत करता है, पेश करता है। ऋषि के बताने का जो माध्यम है, तरीक है, उसको कहा गया है "मंत्र"। ऋषि, कवि, योगी, कविताओं को मानसिक रूप से सोचता नहीं है वह कविताओं को देखता है, संस्कृत में "पश्यंती" बोला जाता है। इसलिए मानसिक ज्ञान का, मानसिक निपुणता का, मानसिक हुनर का होना तुकांत कवि के लिए तो बहुत मूल्य है लेकिन कोई भी व्यक्ति योगी, कवि, ऋषि मानसिक शक्ति के बल पर नहीं बन सकता।

उसके लिए दूर दृष्टि, भगवत कृपा और प्रेरणा का होना आवश्यक है। दृष्टि एक अहम अंग, उपादान है। कभी भी श्रीअरविंद ने अपने आप को, ईशाउपनिषद जिसमें केवल 18 श्लोक हैं, और उनका प्रेम देखिए कविता को लेकर उन्होंने 650 पृष्ठों की एक टीका लिखी, 12 अलग-अलग पाण्डुलिपि लिखी इस ईशाउपनिषद के। और इसी में वे एक जगह लिखते हैं, कभी एक ऋषि ने नहीं कहा दूसरे ऋषि को कि आप क्या सोचते हैं? "आप क्या सोचते हैं?"- की कोई भाषा नहीं है। क्योंकि तर्क का वहाँ कोई काम नहीं है।

"आप क्या जानते है?" ऋषियों का हर ज्ञान अनुभूतजन्य ज्ञान है। "आप जानते क्या हो?" जो कुछ भी ऋषियों ने कहा, श्रीअरविंद की ऊंचाई वाले कवियों ने कहा वह उनका अनुभव जन्य ज्ञान है। वह सोचा हुआ नहीं है। वह कविता याद करके, सोच करके, मानसिक शक्ति से हासिल की हुई कविता कर्म नहीं है। वह देखा हुआ है, "पश्यंती" है। वह देखा हुआ अनुभव जन्य ज्ञान है। यह अंतर एक सामान्य तुकांत कवि में और एक कवि में है। योगी भी हैं श्रीअरविंद, ऋषि भी हैं श्रीअरविंद, और

कवि भी हैं श्रीअरविंद। ऐसा विलक्षण संगम जहां होगा वहाँ एक-एक पंक्ति जो लिखी जाएगी वह "जीवन-परिवर्तन" की पंक्तियाँ होंगी, कविता होगी। साथियों यही वजह है कि भारत में महाकाव्यों को लिखने की परंपरा नहीं हो सकी है। क्योंकि इसके लिए केवल सामान्य बौद्धिक कौशल नहीं चाहिए, जैसा की कई बार बड़े-बड़े लेखक करते हैं कि पाँच सितारा होटल में रुकना है और फिर सर्वहारा पर कविता लिखनी है, गरीब पर कविता लिखनी है। उनके नीजी जीवन के आचरण की कोई तपस्या नहीं है, (15.13) । कोई आचरण की साधना नहीं है और फिर आप कोशिश करते हैं कि आप महाकाव्य लिखें यह संभव ही नहीं है। यही वजह है कि पिछले 75 वर्षों में कुछ भी नहीं लिखा गया बल्कि यह बहुत संभव है कि आगामी सैकड़ों वर्षों तक कोई दूसरा महाकाव्य अँग्रेजी में सावित्री के स्तर का आध्यात्मिक महाकाव्य, साहित्यिक रचना फिर भी संभव हो सकती है लेकिन अनुभव और तपस्या जिसमें डाली गई हो ऐसा आध्यात्मिक महाकाव्य लिखने के लिए तो उस ऊंचाई पर ही जाना पड़ेगा।

जिसकी कुछ चंद फुहारें सुनकर, कुछ चंद फुहारें महसूस करके, श्रीअरविंद ने महाराज अश्वमती के लिए लिखा "What now we see is a shadow of what must come" ज्ञान के अरुणोदय की ये चर्चा है। अभी जो दिख रहा है वह तो उसकी छाया मात्र है जो असल में आने वाला है। यही वजह है कि एक दौर में जो ऋषि नहीं था वह कवि भी नहीं था और कोई कवि ऐसा नहीं था जो ऋषि नहीं था। यही कारण है कि भारत की ज्ञान परम्परा का प्राचीन ग्रंथ कविता के रूप में है। उसमें रामायण शामिल है, महाभारत शामिल है, उसमें वेद शामिल हैं, उसमें उपनिषद शामिल हैं, उसमें आरण्यक शामिल हैं, उसमें सारा का सारा आलीशान तेजस्वी साहित्य शामिल है। ये कविता इसलिए है कि इसे कवियों और ऋषियों ने मिलकर, ऋषियों और कवियों की चेतना ने इसे देखा है। यह हमारी आर्ष मनीषा का सारा का सारा साहित्य कविता है, इसकी वजह यही है। और इसीलिए भी संस्कृत जरूरी है ताकि हम संस्कृत के द्वारा उस साहित्य की आत्मा में प्रवेश कर सकें।

समकालीन भारत की एक बहुत बड़ी समस्या है कि भारत के जनमानस की भाषा संस्कृत नहीं है। संस्कृत नहीं है तो फिर उस सनातन झरने से भी कोई प्रत्यक्ष ताल्लुक नहीं है। कश्मीर की धरती पर सोमदेव ने जो कथा-सरितसागर लिखा वह उन बहुत सारे चंद ग्रन्थों में से एक है। भारतीय आर्ष मनीषा के ग्रंथ हैं और हमको वहाँ तक जाना चाहिए। मैं आपका ध्यान सी.आर.दास ने जो तीन विशेषण श्रीअरविंद के लिए चुने उन तीन विशेषणों में श्रीअरविंद का सारा जीवन और संदेश समाहित हो जाता है। सी.आर.दास ने उस खचाखच भरी सभा में क्या कहा? "Long after he is dead and gone he will be looked upon in India as (पहला विशेषण है) poet of patriotism, (फिर है) prophet of nationalism, (और तीसरी बात है) lover of humanity। यही तीन उपदान, ये तीन श्रेष्ठ वरदान श्रीअरविंद ने भारत की भूमि को दिया। "as poet of patriotism" उन्होंने क्या देखा? जब वे भारत में आए तो उनके आस-पास चारों तरफ एक प्रकार की निरर्थकता, फालतूपन सा छाया हुआ था। धुन्ध सा छाया हुआ था।

कहीं कोई बेचैनी नहीं थी, कोई उथल-पुथल नहीं थी। 1912 आते-आते तक भी गोखले जैसे बड़े नेता काँग्रेस के हुए, जिनकी भाषा यह थी, यह दस्तावेजों में सुरक्षित लिखा पड़ा है, "पूर्ण स्वराज की बात तो कोई सिरफिरा ही करेगा"। और श्रीअरविंद 1907 में पूर्ण स्वराज की बात कर चुके थे। "as poet of patriotism" श्रीअरविंद का पहला काम क्या है? उन्होंने बीसवीं सदी के पहले दशक में जो लिखा वह पूरी की पूरी कविता, वह पूरा का पूरा साहित्य शक्ति की साधना का साहित्य है। उन्होंने महसूस किया भारत की जो गुलामी है, भारत का जो पतन है, भारत का जो बिखराव है, खुद बंगाली जाति को भी, कायर और कमजोर माना जाता था। और एक तरफ दिख रहा था वह विशाल आलीशान राज जिसका दुनिया में लगभग 60 मुल्कों में, उस दौर में उसका राज चलता था।

भारतीय जनमानस तो बहुत मायूस, बहुत निराश, बहुत उदास हो गया था। वह बिखरा हुआ भी था। जो भी राजनीतिक दल था वह हाथ जोड़ता था, प्रार्थना और दरख्वास्त देने की बात करता था, इसीलिए "New lamps for old" में उन्होंने इतना निर्मम प्रहार भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस पर किया कि अगर एक अंधा-अंधे को कंधे पर लादकर कहाँ तक ले जाएगा और वे दोनों खड्ड में गिरेंगे यह तय है। पाठकों यह तय है, चाहे वो "दुर्गास्तोत्र" हो चाहे "भवानी मंदिर" हो जिसे

आज भी पढ़कर रोंगटे खड़े होते हैं। भवानी मंदिर के द्वारा इशारा किया श्रीअरविंद ने, पहले उन्होंने बताया कि राष्ट्र क्या है? (20.08)

हम उन सब के सबसे करीब होते हैं भावनात्मक रूप से माँ के, इतना खूबसूरत हिमालय हमारे पास है, इतनी खूबसूरत गंगा, यमुना, गोदावरी, ब्रह्मपुत्र, नर्मदा नदियां है, गंगा का इतना विशाल मैदान है, लेकिन इनसे अपनी पहचान न करते हुए उन्होंने कहा कि राष्ट्र, शक्ति का साक्षात स्वरूप है। दूसरी चीज जो उन्होंने बताई वह है यह तुम्हारा राष्ट्र क्यों है? भवानी मंदिर में ही इसका जवाब है - दुनिया को म्लेच्छों से दूर करने के लिए और पुनः सारी मानव जाति को आर्यन बनाने के लिए ही भारत का उदय हुआ है। इसीलिए भारत नष्ट नहीं हो सकता। हमारी जाति का विलोपन नहीं हो सकता। क्योंकि मानव जाति में जितने भी खंड मानव के लिए, इन्सानों के लिए हैं उसमें सबसे उदात्त, सबसे आलीशान, सबसे तेजस्वी भाग्य भारत के लिए रखा गया है। और वह भाग्य क्या है? एक तो सनातन धर्म विश्व का सबसे विराट, समन्वयवादी धर्म सब धर्मों को अपने अंदर लेकर सनातन धर्म को विश्व के सामने प्रस्तुत करेगा, एक आत्मा के रूप में। और दूसरा है मानवता में जो बर्बरता है, जो म्लेच्छवाद है उस पाप को मानव जाति से हटा कर शुद्ध करना।

श्रीअरविंद ने 'शुद्ध / पवित्र करना' शब्द का प्रयोग किया है। म्लेच्छवाद क्या है? जहां-जहां भी गंदगी है, जहां-जहां भी आतंकवाद है, जहां-जहां भी असुरत्व है, जहां-जहां भी अज्ञान के प्रति जरूरत से ज्यादा मोह है, जहां-जहां भी अहंकार है, दुनिया के किसी भी देश में जहां सत्य की साधना नहीं है, जहां विश्व को मित्र देखने वाली दृष्टि नहीं है, जहां किसी दूसरे के विचार और धर्म के लिए जगह नहीं है, उन हर जगह में म्लेच्छत्व है। भारत ही वह देश है, वह खंड है, वह आर्य भूमि है जो आर्य जाति को इस तरह के म्लेच्छत्व से पवित्र करे और फिर से सारी मानव जाति को आर्यत्व प्रदान करे। तो आर्यत्व के रंग में रंगना, आपने महाभारत, रामायण सब में देखा है, एक भी मौका ऐसा नहीं है, एक भी उदाहरण ऐसा नहीं है जहां एक राजा दूसरे राजा को या एक रानी अपने सम्राट को महाराज या महान सम्राट कहती हो, सम्बोधन है 'आर्यपुत्र'। आर्यत्व, श्रेष्ठत्व यह है आर्य भूमि।

उसी दस्तावेज़ में श्रीअरविंद ने ये भी लिखा, यह महसूस करते हुए कि कहीं हम यह न मान लें की ये बाहरी लोग हैं हमें मार देंगे, हम तो बहुत अच्छे लोग हैं लेकिन ये हमें समाप्त कर देंगे। उन्होंने यह भी लिखा कि कोई भी देश, कोई भी जाति कमजोर नहीं हो सकती जब तक वह खुद को कमजोर न समझे, और कोई भी मुल्क नष्ट नहीं हो सकता जब तक वह अपनी इच्छा से मृत्यु का वरण न करे, मृत्यु स्वीकार न करे। ये सब क्या था, ये सब वो दायित्व था जिस कारण सी.आर.दास ने उन्हें कहा "Poet of Patriotism", इसने आग लगा दी थी, बारूद बना दिया था नौजवानों को। मैंने डॉ.करन सिंह की किताब "Prophet of Indian Nationalism" की भूमिका पढ़ी है, भूमिका जवाहर लाल नेहरू ने लिखी है और उन्होंने कहा है वन्देमातरम कि में हर किस्त का नौजवानों को इंतजार रहता था।

सुभाष चंद्र बोस को हर किस्त का इंतजार रहता था। बीसवीं सदी के पहले दशक में सबसे पहले राजनीतिक हीरो अगर कोई थे तो वह थे श्रीअरविंद। उसी बीच धर्म पत्रिका में पहली बार "दुर्गास्तोत्र" में उन्होंने लिखा और उसमें एक नई दृष्टि दी, उसमें भी एक बार फिर लिखा कि राष्ट्र को गुलाम बनाने वाले जो कारण हैं वे है हमारा स्वार्थ, हमारा भय, हमारी क्षुद्राशयता। और हम में जो हमारी मौलिकता थी, ज्ञान था, शिक्षा थी, सच्चरित्रता थी, मेघा शक्ति थी, श्रद्धा भक्ति थी वह लुप्त हो गई है। (23.58) इनका लोप होना और स्वार्थ भावना और भय का आगे आना, इनका प्रभावी हो जाना भारत की गुलामी का कारण था। तो आवाहन किया श्री अरविंद ने काली रोपणी, निर्मल्य मालनी, दिगंबरी, कृपाण पाणवेदी, असुर विनाशिनी अपने क्रूर निनाद से अंत: शत्रुओं का विनाश कर।

अब यहाँ यह महत्वपूर्ण है कि "अन्तः शत्रुओं का विनाश कर" इनमें से एक भी हमारे अंदर जीवित न रहे। जब तक हम भारतीय स्वार्थी रहेंगे, खुदगर्ज रहेंगे, डरे हुए रहेंगे, उदार नहीं होंगे, क्षुद्राशयता में जिएंगे तब तक अगर बाहरी आजादी मिल भी गई, राजनीतिक आजादी मिल भी गई तो हम उस आजादी का क्या करेंगे? हम उसे संभाल ही नहीं पाएंगे। तो यह

अन्तःदृष्टि श्रीअरविंद ने दी। और कैसा भारत चाहा – बलशाली, पराक्रमी, उन्नत चेता-जागी, भारत के पवित्र काननों में, उर्वर खेतों में, गगन सहचर पर्वतों के तले, ऊत थाला नदियों के तीर पर, एकता से, सत शक्ति से, शिल्प से, साहित्य से, विक्रम से, ज्ञान से श्रेष्ठ हो कर निवास करे। मातृ चरणों में यही प्रार्थना है। ये आरजू है , ये अभिप्सा है।

हमारा सबसे बड़ा नुकसान हमारे अंदर जो विद्वेष की भावना रही, हमारे अंदर जिस एकता की भावना का अभाव रहा, भारत अगर एक-एक हजार साल तक गुलाम रहा उसका सबसे बड़ा कारण यही रहा कि जहाँ सिकंदर के सामने पुरू खड़ा था वहीं उसके बगल में एक दूसरा भारतीय, आम्भी, खड़ा उसकी मदद कर रहा था। ऐसा कोई षड़यंत्र नहीं है, ऐसी कोई साजिश नहीं है, भारतीय इतिहास की ऐसी कोई लड़ाई नहीं है जिसमें हम भारतीयों ने अपने ही भाई के विरुद्ध संग्राम में हिस्सा नहीं लिया। आपको यह सुनकर ताज्जुब होगा कि जब झाँसी की रानी को मारा गया, तब तीन-चार दिन बाद ग्वालियर घराने में बाकायदा इसके लिए पार्टी हुई। उस विजय का जश्न मनाया गया। ये भारत की तस्वीर है, ये भारत के पराजय के कारण रहे हैं जिसे श्रीअरविंद ने बड़ी गहराई से देखा।

भारतीय नौजवानों में जो पद-दलित था, जिसका आत्मसम्मान बहुत गिर चुका था, जिसका आत्मा विश्वास बहुत कम था, उसके लिए श्रीअरविंद ने क्या कहा, "यह केवल भारतीय ही है जो सब का विश्वास करता है, उसमें हिम्मत है, जो सब कुछ न्यौछावर कर देता है। (it is only the Indian who will believe everything, dare everything, sacrifice everything)". जब यह वाणी गूंजी, जब यह चेतना में गया, तब वह पद-दलित नौजवान जो गली में अंग्रेजों से पिट रहा था, जिसका अपना कोई स्वाभिमान नहीं था, उसके भीतर ओज और बल का संचार हुआ। भारतीय का वह क्या विश्वास था – वह 60 मुल्कों पर काबिज जो अंग्रेज़ हैं यह आखिरी सत्ता नहीं है।

उसके ऊपर भी एक सत्ता है और यह अँग्रेजी सत्ता भी धूल-धूसरित हो सकती है। और जब श्रीअरविंद कह रहे थे "वह जबर्दस्त साहसी है, उसे उखाड़ फेंको", एक इशारा था भीतर-ही-भीतर कि उसे उखाड़ फेंको। इसे उखाड़ फेंकने की हिम्मत करो। यह नौजवान हर तरह का त्याग कर सकता है। हमारे निजी जीवन की, हमारे राष्ट्र के सामने कीमत ही क्या है? राष्ट्र के सामने हम हैं ही क्या? हमारे पास है क्या इतना कि हमारे जान की बहुत कीमत है। अगर माँ भारती की छाती पर सवार हो कर कोई म्लेच्छ, कोई परदेशी उसका लहू पी रहा है तो नौजवान क्या करेगा? "सर्वस्व न्यौछावर करो", एक इशारा किया उन्होंने "recover the patrimony of your fore fathers", शब्द महत्वपूर्ण हैं, "recover" का प्रयोग किया उन्होंने।

किसी भी वस्तु को हम फिर से हासिल कर सकते हैं लेकिन नष्ट हुई चीज को हम फिर से हासिल नहीं कर सकते हैं। अपने पुरखों की विरासत को फिर से हासिल करो। और वह विरासत क्या है, "आर्य विचार, आर्य अनुशासन, आर्य जीवन, आर्य चरित्र" को फिर से हासिल करो। ये तेजस्वी संकेत हैं उसके अंदर, और उन्हें केवल बुद्धि और ज्ञान में नहीं बल्कि जीवन में हासिल करो। वेदान्त, गीता और योग को जीवन में अपनाओ, कठिन और असंभव शब्द तुम्हारे शब्दकोश से गायब हो जाएंगे। आज जिस भारतीय जाति को, आज जिस बंगाली जाति को कायर कहा जाता है, कमजोर कहा जाता है, उनमें मृत्यु और नष्ट होने का भय नहीं रहेगा। यह जो वाणी गूंजी श्रीअरविंद की, जब श्रीअरविंद ये लिख रहे थे तब उनका कवित्व देश-प्रेम का ऋण चुका रहा था। "प्रोफेट ऑफ नेशनलिज़्म" का खर्च भी इसी में हो गया, इसी में उन्होंने पूरा कर दिया। उसी दौर में उन्होंने एक छंद-बद्ध कविता संस्कृत में लिखी। एक व्यक्ति जिसके पिता यह कह कर गए थे कि मैं किसी भी हाल में इसे भारतीयों की छाया से दूर रखना चाहता हूँ, खबरदार भारतीय संस्कृति और भारतीय की कोई छाप मेरे इस बच्चे पर नहीं पड़नी चाहिए।

वह व्यक्ति भारत आता है, बंगाली सीखता है, गुजराती सीखता है, संस्कृत सीखता है और न केवल सीखता है बल्कि संस्कृत में छंद-बद्ध कविता लिखता है, तेजस्वी छंद-बद्ध कविता लिखने का सामर्थ्य रखता है। इस कविता में एक किस्सा कहने वाला है, उनका संदेश पूरा-का-पूरा बीसवीं सदी के पहले दशक में साफ है, सत्य का संदेश है।

भवानी भारती में भी एक मौज-मस्ती में डूबा हुआ कथा वाचक है जिसको कोई मतलब नहीं है कि उसके भाई-बहनों का लहू राक्षस पी रहे थे और वह राक्षस था वह औपनिवेशक सत्ता धारी, उनको भुला कर अपने राग-रंग में, व्यसन में वह डूबा हुआ है। उसको उसकी दरिद्रता से, उनकी बुरी दशा से कोई मतलब नहीं है। उसी समय प्रकट होती है काली और उसके वक्ष-स्थल पर एक प्रहार करती है, और कहती है, "संस्कृत कविता का कोट" (30.00)

"ये जो तुम दीन-दरिद्र, जघन्य खंड लोगों का सहारा लेकर आलिंगन कर रहे हो और तुम जो अपने भोग विलास में, अपने आलस में, अपने प्रमाद में अपने वनिताओं का, सुंदरियों का आलिंगन कर रहे हो, का पुरुष – नामर्द तुम लोगों को पता नहीं है कि इनके रूप में तुम मृत्यु का ही आलिंगन कर रहे हो।" इस तरह की दृष्टि, इस तरह का विचार, यह पूरा का पूरा पहले और दूसरे दशक में खास तरह से पहले दशक में श्रीअरविंद दे रहे थे। और इसके बाद जब एक भूमि तैयार हुई, उसके बाद उनका अलीपुर जेल में रहना हुआ, वहाँ जो भागवत साक्षात्कार हुआ, उग्र राष्ट्रवाद को आध्यात्मिक राष्ट्रवाद की ऊर्जा और ऑरा दे दिया। फिर वे लिखते हैं, अलीपुर जेल में लिखी हुई कविता "Invitation" (आमंत्रण)। इस कविता के पहले बड़ौदा में 1898 के लगभग 22 कविता "Songs of ….. " के नाम से छपी थी।

और ये कवितायें ज़्यादातर कुछ आयरिश राष्ट्रवाद से प्रभावित थीं, कुछ उन पर जो रूमानी प्रभाव था उस पर थीं। लगभग 8 कवितायें माइकेल मधुसूदन पर थीं, अपने श्री बंकिम चंद्र चटर्जी, अपने नाना ऋषि नारायण बोस ऐसे 8 महापुरुषों पर उन्होंने व्यक्तिगत कविता लिखी। लेकिन श्रीअरविंद का दूसरा कालखंड इसके बाद शुरू होता है Invitation से। एक तरह से 1908-10 से यह कालखंड शुरू होता है। ज्यादातर मौकों पर, साफ मौसम होने पर, अनुकूल परिस्थितियाँ होने पर लोग सफर के लिए निकलते हैं। लेकिन श्रीअरविंद अपने आध्यात्मिक आरोहण के लिए जो कार्य कर रहे हैं वह ऐसे मौसम में कर रहे हैं जब आसपास में तूफानी हवाएँ चल रही थीं। " With the winds and weather beating around me, upto the hill where I go who will come with me, who will climb with me …… with the winds and the snow ". जब आसपास ऐसी तेज तूफानी हवाएँ चल रही हैं, ऊंचे हिमालय के शिखर पर मैं जाता हूँ, मेरे साथ कौन आयेगा, मेरे साथ कौन आरोहण करेगा, कौन जल धाराओं को पैदल पर करेगा, कौन भारी कदमों से बर्फ पर चलेगा। और इस कविता की जो अंतिम छंद है एक दृष्टि से होता है जिसमें फिर से हमें भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की झलक मिलती है। , (32.58)

"I am the lord of tempest in the mountain, I am the spirit of freedom and cry……. who shares my kingdom and walks my…… " जो मेरे पास आयेगा जो मेरे राज में रहेगा, उसे बहुत निर्मल-विमल होना चाहिए, उसके जीवन में कोई दुराव छिपाव नहीं होना चाहिए। उसे तेज होना चाहिए, उसे ईमानदार होना चाहिए और उसे खतरों का आता-पता होना चाहिए। He must be ….. to danger. यह एक प्रकार का आवाहन था, एक आस्था थी, एक आश्वासन था, यह एक साहसी अवाहन था। मेरा जो आरोहण आने वाला चालीस वर्षों में, मेरी तपस्या-साधना प्रारम्भ होने वाली है, वह कोई सामान्य साधना – तपस्या नहीं है, वह मानवता के इतिहास में, जिस तरह रात-दिन में उन्होंने सावित्री शुरू की, माता जी से कहा I have launched myself on a rudderless boat in the waste-ness of infinity. 34.05 "मैंने खुद को एक पतवार विहीन नौका में असीम सागर में उतार दिया है.

अब मैं नहीं जनता कि मैं कहाँ तक पहुंचूंगा"। ये श्रीअरविंद के उद्गार हैं, उनकी स्वीकारोक्ति है माताजी के साथ। कितना विशाल, कितना आलीशान सावित्री का फ़लक है लेकिन उससे पहले कि यह तैयारी है। उसके पहले लंबी-लंबी कविताओं के माध्यम से सावित्री को जन्म दे रहे हैं। सावित्री में जाना चाहते हैं, उस चेतना को लाना चाहते हैं। उससे पहले बहुत-बहुत खूबसूरत पड़ाव में, खूबसूरत मार्मिक गीतों का, छंदों का पड़ाव है। उनकी बहुत अच्छी छोटी कविताओं का पड़ाव है। "देवता का श्रम" जैसी कविता का पड़ाव है, "WHO" जैसी मार्मिक कविता का पड़ाव है, जिसकी चार मार्मिक पंक्तियाँ हैं जिसे पढ़ने से मैं अपने आपको रोक नहीं सकता। इसे उन्होंने उसी दौरान लिखी, जिसकी प्रतिध्वनि हमें फिर से सावित्री में मिलती है। (35.04)

देवता के श्रम में कहीं न कहीं सावित्री की अनुगूँज है। कैसे, क्या है देवता का श्रम, He who brings the heaven here must descend himself in ..... and the burden of earthly nature beard and trade the dollar of sway ..... . श्रीअरविंद का अवतार कोई बहुत बड़ा अलौकिक अवतार नहीं है जो मनुष्यों से बहुत ऊपर है, जिसके लिए कुछ भी करना बहुत आसान है, उसके कई सिर हैं उसके कई हाथ हैं, ऐसा नहीं है श्रीअरविंद का अवतार, हमीं में से एक है, इन्सानों के बीच ही पैदा हुआ अवतार है। उसे खुद को एक मिट्टी बनना पड़ेगा, इस शब्द का कुछ भी अर्थ लिया जा सकता है। उसे अपने आप को पूर्णतया अहंकार रहित बनाना पड़ेगा। उसे अपने को बहुत सहज-सरल बनाना पड़ेगा, उसे मानवता के सब दुख-दर्द से पहले खुद को जूझना पड़ेगा, ये देवता का श्रम है। ये धरती पर श्रीअरविंद का श्रम है। वह जो मानवता का उद्धार करेगा, वह जो स्वर्ग यहाँ लाएगा, क्योंकि धरती तैयार नहीं है, धरती सहयोगी नहीं है, असत्य का यहाँ बहुत बोल-बाला है। यहाँ लोग न केवल अज्ञानी हैं, बल्कि सावित्री में वे कहते हैं कि अज्ञान से लोग प्रेम करते हैं। और यही वजह है कि जैसे ही कोई ईसा, जैसे ही कोई मूसा, मर्मज्ञ, मंसूर, थॉमस मूर, क्राइस्ट जैसे ही कोई इशारा करता है उस अज्ञान की तरफ, अज्ञान को मिटने के बदले वे उस साथी को, उस दूत को ही मिटा देते हैं, वे उस साथी को ही मिटा देते हैं।

(36.30) यह धरती के लोगों का तरीका रहा है। जो इस दुनिया को बोध का मुकुट पहनाता है उसीको वे सूली पर लटका देते हैं। ऐसा क्यों है, क्योंकि "This world is in love with its own ignorance, यह दुनिया अपनी अज्ञानता से प्यार करती है।" सावित्री की तैयारी देवता के श्रम से भी शुरू हो रही है। और जो बात देवता के श्रम में कही है वही बात बार-बार सावित्री में भी कह रहे हैं। पृष्ठ संख्या 537 में श्रीअरविंद कहते हैं They bring the world of darkest night जो इस धरती पर बोध का, आनंद का, सौंदर्य का उजाला लाएगा उसे खुद को सबसे पहले घनेरी रात से गुजरना होगा। उसकी वजह क्या है, He who saved the earth must share its pain, जो धरा को बचाएगा उसे धरती के दर्दों का साझीदार बनना पड़ेगा। उसे स्वयं को अनुभव करना पड़ेगा। If knows not the grief अगर उसे दर्द की स्वयं को अनुभूती नहीं है तो वह दुःख-दर्द का इलाज कैसे कर पाएगा? वह रोती, बिलखती, कराहती मानवता का, आत्मा का इलाज कैसी कर पाएगी। कहाँ जरूरत है शुद्धि की, इलाज की उसे वह कैसे जान पाएगा? इसीलिए श्रीअरविंद अवतार लिए हैं जो हमारे बीच से ही एक हैं जो God must be borne on the earth and be as a man, that man being a human may grow up as a God ईश्वर आए धरती पर बिलकुल इंसान की शक्ल लेकर आए ताकि इंसान को यह ज्ञान हो जाए, यकीन हो जाए कि उसके भीतर भी ईश्वर की सत्ता जन्म ले सकती है और श्रीअरविंद की साधन में, काव्य में, योग में, यह आपसी ऋण है, वे कहते हैं एक जगह कि जैसे ईश्वर ने अपने को धरती पर उतारा अब यह धरती की बारी है कि वह अब अपने भीतर की भागवत्ता को उद्घाटित करे, प्रकट करे, उन्नत करे। जब तक यह कर्ज पूरा नहीं होगा तब तक यह सृजन चलता रहेगा, यह अधूरापन खलता रहेगा, और तब तक श्रीअरविंद की साधना, योग और संदेश फलीभूत नहीं होंगे। (38.39)

इसके अलावा Bride of Fire शीर्षक से एक बहुत सुंदर कविता लिखते हैं जिसमें वे बोलते हैं की मैं अब शोक और दुःख से ऊपर हो गया हूँ, तुम्हारे आनंद को झेल सकता हूँ, आप मेरी चेतना में उतरो। Who में वे कहते हैं कि
"All music is only the sound of His laughter, ये सारा संगीत इस धरती पर भगवान की हंसी की आवाज है
All beauty the smile of His passionate bliss, उसका जो उत्कट आनंद है वह सारा-का-सारा उसके सौंदर्य का है।

Our lives are His heart-beats, ये जो हमारी धड़कनें धड़क रही हैं यह दरअसल भगवान के हृदय की धड़कनें हैं।
Our rapture the bridal of Radha and Krishn. और हम जो भी हँसते हैं, जो भी आनंद लेते हैं, आनंद की फुहारों में जीते हैं, वह राधा और कृष्ण की हंसी है।
Our love is their kiss, हम जब भी प्रेम की सौगात बांटते हैं, जब हम प्रेममय होकर वास्तव में प्रेम को जीते हैं वह वास्तव में राधा और कृष्ण का चुंबन है"

ये Who की पंक्तियाँ हैं। यही पंक्तियाँ फिर सावित्री में जाकर 624 पृष्ठ पर "प्रेम और मृत्यु के बीच विवाद Debate between love and Death" जो की बहुत ही रोमांचकारी विचार-विमर्श है, अपने आप को समझने के लिए, दुनिया को समझने के लिए, तर्क को समझने के लिए, कुतर्क को समझने के लिए उसमें फिर इसकी अनुगूँज सुनाई देती है। "His laughter of beauty breaks out in green trees. भगवान अगर हँसते होंगे तो इन हरे पेड़ों को देखते हुए महसूस करें की भगवान कैसे हँसते होंगे। (40.24) His moments of beauty ….. in flowers, वह जब सृजन करता होगा तब उसके सृजन के पल फूल के रूप में सबसे उदात्त रूप में सामने आते हैं। दूसरे अर्थों में भगवान कितना श्रेष्ठ रच सकता ही यह फूलों को देख कर महसूस करना चाहिए। The blue seas chant …… are the murmurs of eternal falling from his heart नीले सागर का जो यह गान है, जो ये छोटी नदियों की धाराओं की कलकल है, ये कुछ और नहीं है शाश्वत की वीणा के निकले हुए तान, आवाज,सुर और उसका संगीत है"।

उसके बाद उसी दौरान श्रीअरविंद ने God के शीर्षक से एक छोटी सी कविता लिखी। क्या है वह कविता, उसका एक भाग है

"Thou who disdainest not the worm to be, Nor even the clod,
Therefore we know by that humility, That thou art God

क्योंकि तुम एक महीन कीड़े से भी नफरत नहीं करते हो, उसके होने से भी तुम्हें कोई आपत्ति नहीं है, उसको भी सहेजते हो, पुचकारते हो, और तुम्हें एक मामूली मिट्टी के ढेले से भी बड़ा प्यार है, इसी नम्रता से हम जानते हैं की तुम God, ईश्वर हो"। मुझे ध्यान आता है Thoughts of Nephorism की एक पंक्ति ईश्वर की नजरों में कुछ भी छोटा नहीं है, तुम्हारी नजरों में भी कुछ भी छोटा नहीं होना चाहिए – श्रीअरविंद उसमें यही सुझाव देते हैं। इसी प्रकार उनके जो Sonnets, गीत हैं Transformation है, Christ of Identity है, Pilgrims of Night महानिशा का तीर्थ यात्री, liberation है, Songs of Goddess है, नर्मदा के किनारे एक मंदिर में उनको एक महा भगवती दर्शन हुए थे, कश्मीर की यात्रा में उनको एक देवी के दर्शन हुए थे और शंकराचार्य की एक पहाड़ी पर उनका एक गीत है, कृष्ण पर उनका एक गीत है, शिव पर एक गीत है, Devine Worker एक गीत है, और Endless Light के नाम से भी श्रीअरविंद का एक गीत है। (42.35) उन्होंने दोनों तरह के गीत लिखे, अँग्रेजी में दो तरह के गीतों की परंपरा है, जिस में एक .....

और दूसरा शेक्सपीरियन गीत होता है, श्रीअरविंद तो शेक्सपीयर के बहुत ही मुरीद थे, उन्होंने कवियों की तीन श्रेणीयां की हैं जिसमें शेक्सपीयर को सबसे ऊपर रखा हुआ है। शेक्सपीयर, होमर, वाल्मीकि एक तरफ सबसे ऊपर हैं, कालिदास दूसरी पंक्ति में हैं, यह कवियों का विभाजन श्रीअरविंद का है। उनकी जो ये यात्रा गुजरती है, छोटी कविताओं से God से, Gods Labour से, Who से, इसके अलावा Cosmic Man है, इसके अलावा श्रीअरविंद ने बहुत लंबी-लंबी कवितायें लिखी है। एक और महाकाव्य है उसका भी पहला शब्द dawn है, सावित्री का आखिरी शब्द भी dawn है, Ahana है, जिसमें उषा की देवी धरती पर उतर रही है, इसी कड़ी में वह चाहे चित्रांगदा हो, उलूपी हो, Love and death हो, उर्वशी, ऋषि में मनु का उर्वशी के साथ संवाद है, Tale of Nal and Damyanti चार अनुच्छेदों का छोटा सा है, ये सब जब श्रीअरविंद लिख रहे थे अलग-अलग समय में यह कहीं न कहीं सावित्री की तैयारी चल रही थी।
मैंने भी एक पुस्तक लिखी है, यह श्री अरविंद प्रेस से ही आई है, श्रीमाँ के प्रेस से, इसमें श्रीअरविंद को 2-3 कवितायें समर्पित हैं, मैं इनमें से एक कविता का पाठ कर समाप्त करूंगा:

जगत की धड़कनों पर देवता का श्रम

कली का नव विनायक श्री कृष्ण का धन
स्वर्णलता का .....

प्रार्थना और अभीप्सा

-श्रीमाँ

नाना प्रकार की प्रार्थनाएँ होती हैं । एक प्रार्थना होती है बाहरी और भौतिक , महज़ शब्दों को ज़बानी रट लिया जाता है और उन्हें बिना समझे यंत्र की तरह दुहराया जाता है । इससे बहुत अधिक लाभ नहीं होता । पर , सामान्यतया, इसका एक परिणाम होता है , यह तुम्हें शांत, अचंचल बना देता है । यदि तुम कुछ शब्दों या स्वरों को कुछ दिनों तक लगातार दुहराते रहो तो अंत में वह तुम्हें एक प्रकार की शांति की अवस्था में पहुँचा देता है । एक दूसरे प्रकार की प्रार्थना है जो किसी इच्छा की स्वाभाविक अभिव्यक्ति होती है ; तुम कोई विशेष वस्तु चाहते हो और उसे तुम स्पष्ट रूप में प्रकट करते हो । तुम किसी चीज के लिए या किसी अवस्था के लिए प्रार्थना कर सकते हो, तुम किसी व्यक्ति के लिए या स्वयं अपने लिए प्रार्थना कर सकते हो । एक यह भी प्रकार है जिसमें प्रार्थना अभीप्सा की सीमा पर पहुँच जाती है और वहाँ दोनों मिल जाती हैं ;

यह एक सजीव में अनुभव का आप मूर्तिमान होना है ; यह प्रार्थना तुम्हारी सत्ता की गहराई से उद्गत होती है , यह अपने जीवन में उतरी हुई किसी आंतरिक चीज का उद्गार होती है ; यह अनुभूति के लिए कृतज्ञता प्रकट करना चाहती है, उसे जारी रखने के लिए विनय करती है या कोई व्याख्या चाहती है । उस समय यह, जैसा कि मैंने कहा था, प्राय: एक अभीप्सा होती है ।

पर कोई आवश्यक नहीं कि अभीप्सा शब्दों का रूप ले ही ; यह अगर शब्दों का व्यवहार करती भी है तो उन्हें एक प्रकार के आह्वान का आकार प्रदान करती है। इस तरह तुम एक विशिष्ट अवस्था में रहने की इच्छा करते हो । तुमने, उदाहरणार्थ , एक ऐसी चीज़ देखी है जो तुम्हारे आदर्श के साथ मेल नहीं खाती , जो एक अंधकार या अज्ञान की क्रिया है या यहाँ तक कि एक प्रकार की अशुभ इच्छा है । तुम उसे बदली हुई प्रकट नहीं करते , बल्कि यह तुम्हारे अंदर एक लौ की भाँति, स्वयं इस अनुभव की ही सच्ची पुष्पांजलि के रूप में उठती है जो विशाल और महान होने की, अधिक स्पष्ट और सुनिश्चित होने की कोशिश करती है। यह ठीक है कि यदि कोई उस अनुभव को स्मरण करने और लिख डालने की चेष्टा करे तो ये सब बातें शब्दों में व्यक्त की जा सकती हैं । परंतु स्वयं वह अनुभव, वह अभीप्सा, जैसा कि मैंने कहा है, एक लौ के जैसे होती है जो ऊपर का धारण किए रहती है जिसे वह माँगती है । मैं कहती हूँ कि 'माँगती है', परंतु वह क्रिया बिल्कुल ही वैसी नहीं होती जैसी कि किसी कामना की होती है ; वह सचमुच में एक लौ होती है , वह शुद्धिकारक संकल्प की लौ होती है जो अपने केंद्र में उस लक्ष्य को लिए रहती है जिसे वह चरितार्थ करना चाहती है ।

अपने किसी दोष को खोज निकालना तुम्हें उसे अधिक प्रगति का, महत्तर आत्मानुशासन का, भगवान् की ओर और अधिक आरोहण करने का एक अवसर बनाने की प्रेरणा प्रदान करता है । यह तुम्हारे भावी जीवन के लिए एक दरवाजा खोल देता है जिसे तुम अधिक स्पष्ट, अधिक सच्चा और अधिक तीव्र बनाना चाहते हो, यह सब तुम्हारे अंदर एक घनीभूत शक्ति के रूप में एकत्रित होता है, ऊपर आरोहण करने के लिए ज़ोरों से फेंक देता है । इसे शब्दों में व्यक्त करने की आवश्यकता नहीं होती । वास्तव में यह एक लौ होती है जो ऊपर की ओर जलती रहती है । यही सच्ची अभीप्सा है । साधारणतया प्रार्थना बहुत अधिक बाह्य वस्तु होती है ; उसका संबंध किसी अत्यंत सुनिश्चित लक्ष्य के साथ होता है । उसका सदा ही एक रूप होता है ; क्योंकि स्वयं वह रूप ही यह बताता है कि प्रार्थना क्या चीज़ है । तुम्हें कोई अभीप्सा हो सकती है और तुम उसे एक प्रार्थना में रूपांतरित कर सकते हो, पर स्वयं वह अभीप्सा उस प्रार्थना के परे की चीज़ है ।

वह एक ऐसी चीज़ है जो बहुत अधिक आंतरिक होती है , अधिकतम आत्मा – स्मृतिपूर्ण होती है , जो कुछ वह होना या करना चाहती है बस उसी उद्देश्य में, प्राय: उसके साथ एकाकार होकर रहती है । प्रार्थना बहुत ऊँचे दर्जे की हो सकती है। तुम्हारी किसी विशेष कामना की परिपूर्ति के लिए एक अनुरोध होने के बदले भगवान ने जो कुछ तुम्हारे लिए किया है या वह कर रहे हैं उसके लिए वह तुम्हारी कृतज्ञता और विनम्रता को व्यक्त कर सकती है । तुम अपने ही तुच्छ व्यक्तित्व और उसके अहंकारपूर्ण हितों में ही संलग्न नहीं हो, तुम अपने अंदर और जगत् में भगवान के तरीकों की कामना करते हो। यह

तुम्हें अभीप्सा के किनारे पहुँचा देता है। क्योंकि अभीप्सा के भी अनेक स्तर हैं और यह अनेक स्तरों पर प्रकट की जाती है । परंतु अभीप्सा का मूल केंद्र चैत्य पुरुष में है , वहीं पर वह अपने शुद्धतम रूप में पाई जाती है , क्योंकि वहीं पर उसका मूल और उद्गम स्थान है । प्रार्थनाएँ सत्ता के दूसरे , निम्नस्तर या गौण स्तरों से आती हैं। कहने का तात्पर्य, भौतिक या स्थूल प्रार्थनाएँ होती है जो भौतिक या स्थूल वस्तुएँ माँगती है , प्राणिक प्रार्थनाएँ , मानसिक प्रार्थनाएँ होती हैं ; फिर चैत्य प्रार्थनाएँ और आध्यात्मिक प्रार्थनाएँ भी होती हैं । इनमें से प्रत्येक का अपना अलग स्वार्थ और अपना अलग मूल्य होता है । मैं फिर कहती हूँ कहीं एक विशेष प्रकार की प्रार्थना होती है जो अत्यंत स्वाभाविक और अत्यंत कामना-शून्य होती है, कहीं अधिक एक निवेदन या एक पुकार के जैसी होती है , सामान्यत: यह स्वयं अपने लिए होती है बल्कि कभी–कभी भगवान के सामने दूसरे के लिए पैरवी के लिए होती है । मैंने अनगिनत बार ऐसी प्रार्थना को बात की बात में अपना अभीप्सा परिणाम उत्पन्न करते हुए देखा है ।

इसका अर्थ है महान श्रद्धा - विश्वास, महान उत्साह , महान सच्चाई और साथ ही हृदय की महान सरलता, ऐसी चीज़ जो हिसाब नहीं लगाती , जो मोल–तोल या लेन–देन नही करती और पाने की भावना के साथ नहीं देती । अधिकांश प्रार्थनाएँ निश्चित रूप से देने की ही भावना रखकर की जाती हैं जिसमें कि मनुष्य पा सके । परन्तु मैं एक अधिक विरल प्रकार की प्रार्थना की बात कह रही थी और वैसी प्रार्थनाएँ भी अवश्य अस्तित्व रखती हैं । उनमें एक प्रकार से भगवान के प्रति कृतज्ञता प्रकृट की जाती है, वे भगवान के गुणों या कार्यो का बखान करनेवाले गीत या स्त्रोत होती हैं।

अतएव साररूप में यह कहा जा सकता है कि प्रार्थना सर्वदा शब्दों की रचना करते समय उसके रचयिता की चेतना की जो अवस्था होती है उसी के अनुसार होती है , साथ ही प्रार्थना एक निर्मित वस्तु होती है । परंतु अभीप्सा तो मनुष्य बिना रचना किए ही कर सकता है । और फिर प्रार्थना के लिए एक व्यक्ति की आवश्यकता होती है जिससे मनुष्य प्रार्थना करता है । अवश्य ही एक विषय में ऐसी कल्पना करते हैं जिसमें भगवान के लिए कोई स्थान नहीं होता जैसे, फ्रांस के विख्यात वैज्ञानिक लाप्लास –La place । ऐसे लोगों के लिए अपने से श्रेष्ठतर किसी सत्ता का अस्तित्व स्वीकार करने की संभावना नहीं जिससे वे प्रार्थना कर सकें या जिसकी ओर पथप्रर्दशन और सहायता के लिए ताक सकें । उनके लिए प्रार्थना करने का प्रश्न ही नहीं उठता । परंतु ऐसे लोग भी, भले ही वे प्रार्थना न करें , अभीप्सा कर सकते हें ।

वे भगवान में विश्वास न करें ,पर वे, उदाहरण के लिए प्रगति का विश्वास कर सकते हैं । वे संसार के विषय में यह कल्पना कर सकते हैं कि यह एक विकसनशील गतिधार है, यह अधिकाधिक अच्छा बन रहा है , क्रमश: उन्नत हो रहा है, निरंतर एक महत्तर परिपूर्णता की ओर वर्द्धित हो रहा है । वे ऐसी प्रगति को मांग सकते है , उसके लिए संकल्प और अभीप्सा कर सकते है ; उन् भगवान के लिए प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं । नि:संदेह अभीप्सा के लिए विश्वास की आवश्यकता होती है , पर यह आवश्यक नहीं कि विश्वास साकार भगवान में ही हो ।

परंतु प्रार्थना सदा ही एक व्यक्ति के प्रति निवेदित होती है, ऐसे व्यक्ति के प्रति जो सुनता है और उसे मंज़ूर करता है । यहीं पर उन दोनों में महान विभेद है । बुद्धिशाली व्यक्ति अभीप्सा को स्वीकार करते है ; पर प्रार्थना को वे निम्न कोटि की चीज समझते हैं , नासमझ लोगों के लिए ही उसे उपयुक्त मानते है ।

रहस्यवादी कहते हैं कि अभीप्सा करना एकदम ठीक हैं , पर तुम्हारी अभीप्सा यदि सुनने की और पूरी करने की चीज़ है तब तुम्हें अवश्य प्रार्थना करनी चाहिए और, तुम्हे जानना चाहिए कि कैसे प्रार्थना करनी चाहिए और किससे करनी चाहिए – और भगवान के सिवा भला ऐसा दूसरा कौन है ? अभीप्सा किसी व्यक्ति के प्रति भी करने कोई आवश्यकता नही ; अभीप्सा किसी व्यक्ति के प्रति नहीं की जाती , बल्कि चेतना की किसी स्थिति,किसी ज्ञान, किसी सिद्धि के प्रति की जाती है । प्रार्थना किसी व्यक्ति के संबंध को उसके साथ जोड़ देती है । प्रार्थना व्यक्तिगत होती है और उसमें किसी व्यक्ति से ऐसी चीज़ माँगी जाती है जिसे केवल वही प्रदान कर सकता है ।

तनावपूर्ण जीवन और मानसिक शांति

भारतीय मनोरोग चिकित्सकों की संस्था के स्वर्ण जयंती समारोह का उद्घाटन करते हुए, विधि आयोग के अध्यक्ष डॉ. गजेंद्रगडकर ने सुझाया है कि भारतीय दंड व्यवस्था पर नए सिरे से विचार करना आवश्यक हो गया है। जितने भी कानून हैं वे यह मानकर बनाए गए कि व्यक्ति अपराध करता है और सरकार की जिम्मेदारी अपराध रोकने तथा अपराधियों के खिलाफ कार्रवाई करने तक ही सीमित है, सोचने का यह तरीका तब से चला आ रहा है, जब इस देश पर विदेशी शासन था और विदेशी सत्ता का उद्देश्य ऐसे कानून बनाना था, जिनके जोर से वह अपना राज कायम रख सके। ये कानून शासक और शासित के अलगाव को स्पष्ट करते हैं और इस भावना को पुष्ट नहीं करते कि जनता ही सरकार है। अगर यह बात न होती तो कोई वजह नहीं थी कि अपराध पर विचार करने के बजाय इस गुत्थी को सुलझाने की कोशिश की जाती कि आखिर कोई व्यक्ति अपराध क्यों करता है।

डॉ गजेंद्रगडकर के अनुसार हमारी सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि हम प्रत्येक घटना को दूर से देखने और सोचने के एक बने-बनाए तरीके से उसके बारे में फौरन कोई फैसला कर लेते हैं। स्वयं को अपराधी के स्थान पर रख कर सोचने और समझने की कोशिश नहीं करते। अपराधी को दंडित करने के बजाय इस पर विचार करना अधिक आवश्यक है कि किसी व्यक्ति ने कोई अपराध क्यों किया? यह विचार कानूनी न होकर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से किया जाना चाहिए। ऐसा विचार शुरू होने और इस विचार के निष्कर्षों के आधार पर कानून बनाने की आवश्यकता स्वीकार किए जाने पर मनोवैज्ञानिकों, मनोविश्लेषकों और मनोरोग चिकित्सकों का महत्व उभरकर सामने आता है।अंग्रेज़ी राज में 'अपराधी जातियाँ' होती थीं। आज इस बात को स्वीकार करने को कोई तैयार नहीं कि कुछ कौमें जरायम पेशा होती हैं या कुछ लोग जन्मजात अपराधी होते हैं अथवा चोर का बेटा चोर ही होगा। इन विचारों को अस्वीकार कर देने के बाद भी यदि अपराध और अपराधी बढ़ते हैं तो कारणों की खोज समाज और उसकी व्यवस्था के दायरे में की जानी चाहिए। युवकों की समस्या बढ़ रही है। पीढ़ी के अंतर की शिकायत की जाती है पारिवारिक और यहाँ तक कि पति-पत्नी के संबंधों में तनाव बढ़ रहा है। मालिक और मजदूर, सत्ता और जनता के बीच की खाई बढ़ती जा रही है। डॉ.गजेंद्रगडकर के अनुसार ऐसे अनगिनत युवक मिलते हैं, जो पाँच-छः अपराध कर चुके हैं। इन सब समस्याओं को समझने के लिए समाज में बढ़ती विसंगतियों और आकांक्षाओं को समझना होगा।

आज़ादी ने समाज के भीतर सब स्तरों पर नई आशाएँ और आकांक्षाएँ उत्पन्न कर दी हैं। विकास के विभिन्न सोपानों से गुजरनेवाले लोकतंत्री समाज की सब खिड़कियाँ खुली हैं, जिनसे विभिन्न देशों और विचारों की सुगंध और दुर्गंधपूर्ण हवाएँ भीतर आ रही हैं। वे सब विकासशील समाज को प्रभावित करती हैं। उसकी मानसिक शांति भंग हो रही है। ऐसे समाज में विधायिका के कानून और न्यायपालिका के निर्णय ही रोग के सही इलाज नहीं, क्योंकि वे सब भौतिक हैं और मानव-मन में मचे अंतर्द्वन्द्व को शांत नहीं करते। यह कार्य मनोवैज्ञानिक, मनोविश्लेषक और मनोरोग चिकित्सक ही कर सकते हैं। बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में हुई एक विचारगोष्ठी में चिकित्सा विज्ञान संस्था के निदेशक ने बताया कि घनी आबादीवाले शहरी क्षेत्रों में जीवन पर इतने दबाव हैं और तनाव इतना बढ़ गया है कि ऐसे क्षेत्रों में रहनेवाले अधिक संख्या में आत्महत्याएँ करते हैं। जिन परिवारों में पीढ़ियों से कोई व्यक्ति स्कूल नहीं गया, उन परिवारों के युवक विश्वविद्यालयों में पहुँच रहे हैं। व्यक्ति और परिवार के बीच असामंजस्य और तनाव बढ़ रहा है। यह स्थिति व्यक्ति को हिंसक बनाती, प्रतिशोध की आग में जलाती, अपराधी बनाती या उसका मानसिक संतुलन बिगाड़ देती है। जीवन में बढ़ती होड़ और निराशा व्यक्ति को अपराध की ओर खींच ले जाती है।डॉ विद्याप्रकाश के अनुसार इस तनावपूर्ण जीवन में मानसिक शांति का श्रेष्ठ उपचार योग और ध्यान है। लेकिन, उस दिशा में जाने और कठिन श्रम, त्याग, सहायता आदि में शांति खोजने के बजाय दिशाहीन युवक गांजा और शराब के नशे में डूब कर गम को गलाना चाहता है। वह नशे के चंगुल में फंसकर अपराध की ओर बढ़ता जाता है। इस समस्या को मनोरोग चिकित्सकों की संख्या बढ़ा कर ही हल किया जा सकता है। कानून और दंड असंतुलन और असामंजस्य को ही बढ़ानेवाले सिद्ध होंगे, भौतिक उपचार से भी अधिक मानसिक विश्लेषण और मानसिक उपचार की आवश्यकता है ।(नभाटा' से साभार)

पूर्वप्रकाशित कर्मधारा-1973 मई,अंक-5

सद्गुण, पवित्रता तथा स्वतंत्रता

-श्री माताजी

सद्गुण हमेशा जीवन में उन वस्तुओं को निकाल बाहर करने में व्यस्त रहता है जो उसे जीवन में बुरी लगती हैं और संसार के विभिन्न देशों के सभी सद्गुणों को यदि एक साथ एकत्र कर दिया जाए तो जीवन में बहुत थोड़ी-सी चीजें ही बच रहेंगी। सद्गुण पूर्णता की खोज करने का दावा करता है, परन्तु पूर्णता का अर्थ है एक समग्रता। अतएव ये दोनों बातें एक-दूसरे को काटती हैं। सद्गुण बहिष्कार करता है, कम करता है, सीमाएँ बाँधता है और पूर्णता प्रत्येक चीज को स्वीकार करती है, किसी चीज का परित्याग नहीं करती, बल्कि प्रत्येक चीज को उसके ठीक स्थान में रखती है—स्पष्ट: ये दोनों साथ सहमत नहीं हो सकते।

साधारणत: जीवन को गंभीरतापूर्वक लेने में दो गतियाँ होती हैं; पहली, उन चीजों को महत्व देना जो शायद कोई महत्व नहीं रखतीं; दूसरी, जीवन को उन थोड़े से गुणों में सीमित कर देना जो पवित्र और जीवन के योग्य समझे जाते है। कुछ लोगों में यह सद्गुण बड़ा रूखा-सूखा, नीरस, भद्दा और आक्रामक बन जाता है और उसे हर जगह, प्रत्येक हर्षयुक्त, स्वाधीन और सुखमय वस्तु में दोष-ही-दोष दिखाई देते हैं।

जीवन को पूर्ण बनाने का---निस्संदेह, यहाँ मेरा मतलब पृथ्वी पर जीवन से है—एकमात्र तरीका है उसकी ओर काफी ऊँचाई पर से देखना ताकि तुम उसे सम्पूर्ण समग्रता में देख सको, केवल उसके वर्तमान पूर्ण रूप को ही नहीं, बल्कि उसके भूत, वर्तमान और भविष्य के सम्पूर्ण रूप को भी देख सको; यह जो कुछ पहले था, जो कुछ अब है और जो कुछ आगे होगा--- हमें यह सब एक साथ देखने में समर्थ होना चाहिए। क्योंकि एकमात्र यही तरीका है क्योंकि किसी भी चीज को नहीं हटाना चाहिए, बल्कि प्रत्येक चीज अपने उचित स्थान पर होनी चाहिए और बाकी के साथ उसका पूर्ण सामंजस्य बना रहना चाहिए और तब जो चीज़ें कट्टर धार्मिक व्यक्ति को इतनी "बुरी", इतनी "तिरस्कार योग्य", इतनी "अग्राह्य" प्रतीत होती हैं वे सब एक पूर्णत: दिव्य जीवन में आनंद और स्वातंत्र्य की गतिविधियाँ बन जाएँगी। और तब कोई भी चीज परमात्मा के इस अद्भुत हास्य को जानने, समझने, अनुभव करने और जीने से हमें रोक नहीं सकेंगी और जो अपने आपको शाश्वत रूप में जीते हुए देखने में असीम आनंद अनुभव करेंगी।

यह आनंद, यह अद्भुत हास्य ही है जो समस्त छाया, समस्त दुख-दर्द और समस्त संताप को विलीन कर देता है। इस आंतरिक सूर्य को पाने के लिए तथा उससे ओतप्रोत होने के लिए स्वयं अपने अंदर पर्याप्त गहराई तक प्रवेश करना काफी है और तब सब कुछ सुसमंजस, ज्योतिर्मय, सूर्यमय हास्य का झरना बन जाता है, जिसमें कहीं भी कोई छाया या दुख नहीं रह सकता.....।

और यह सूर्य, दिव्य हास्य का यह सूर्य प्रत्येक वस्तु के केंद्र में विद्यमान है, प्रत्येक वस्तु का सत्य है--- हमें इसे देखना, अनुभव करना और जीवन में उतारना सीखना चाहिए।

और इसके लिए, हम उन लोगों से दूर रहें जो जीवन को अत्यंत गंभीर रूप में लेते हैं, ऐसे लोग बड़े उबाऊ होते हैं।
जब कभी वातावरण गंभीर हो उठे तो तुम निश्चित हो सकते हो कि कहीं कुछ गड़बड़ है, अशांत करने वाला कोई प्रभाव, कोई पुरानी आदत पुन: प्रतिष्ठित होने का प्रयास कर रही है जिसे स्वीकारना नहीं चाहिए । यह सब पश्चाताप, यह सब संताप, अयोग्यता की भावना, अपराध की भावना और फिर एक पग और आगे, तुम्हारे अंदर पाप की भावना होती है। "ओह! मुझे यह सब निषेध और जीवन को दो भागों में—छोटा और बड़ा, पवित्र और अपवित्र---बाँट देने की यह आदत!" जो लोग यह घोषणा करते हैं कि वे आध्यात्मिक जीवन का अनुसरण करते हैं, वे कहते हैं: कुछ चीज को गंभीरतापूर्वक नहीं लेते, वह प्रत्येक चीज से आनंद प्राप्त करते हैं और वह तुम्हारे साथ खेलते हैं, यदि तुम उनके साथ खेलना जानो। तुम खेलना नहीं

जानते, लोग खेलना नहीं जानते। परन्तु वह कितनी अच्छी तरह खेलना जानते हैं! कितनी अच्छी तरह खेलते हैं। प्रत्येक चीज के साथ, छोटी-से-छोटी चीज के साथ खेलते हैं। तुम्हें सोच-समझकर, सजाकर रखना होगा, नहीं, तुम तो खेलने जा रहे हो: तुम इस चीज को यहाँ और उस चीज को वहाँ रख दो और फिर इसी तरह रखते चले जाओ। और फिर दूसरी बार दूसरे ढंग से रखो.....। कितना सुंदर खेल है और कितना मजेदार! तो ठीक है, अब हम यह सीखने की कोशिश करेंगे कि भगवान के साथ-साथ कैसे हँसा जाता है।

धर्मात्मा बनने की आवश्यकता

आधाररूप में, पवित्रता के लिए, मनुष्यों में स्थित शुभ के लिए इस प्रकार का संकल्प ही—सामान्य मानव मन में धर्मात्मा बनने की आवश्यकता के द्वारा अनूदित होता है---सच्चे आत्मदान के रास्ते में सबसे बड़ी बाधा है। यही मिथ्यात्व के और विशेष रूप से पांखड के मूल में विद्यमान है, दूसरे शब्दों में, व्यक्तिगत कठिनाइयों के बोझ के अपने हिस्से को अपने ऊपर लेना अस्वीकार कर देता है.....।

धर्मात्मा बनने का स्वांग भरने की कोशिश मत करो। यह देखो कि तुम किस हदतक भगवद्विरोधी तत्त्व के साथ युक्त हो गए हो, उसके साथ एक हो गए हो। बोझ का अपना हिस्सा अपने ऊपर ले लो, यह स्वीकार कर लो कि तुम स्वयं अपवित्र और झूठे हो। इस प्रकार तुम इस 'काली छाया' को लेकर समर्पित कर सकते हो और जिस हद तक तुम इसे लेकर समर्पित कर सकोगे उसी हद तक वस्तुएँ भी बदल जाएँगी।

पवित्र व्यक्तियों की सूची में अपने आप को रखने की चेष्टा मत करो। जो अंधकार में निवास करते हैं उनके साथ रहना स्वीकार करो और फिर समग्र प्रेम सहित सब कुछ भगवान को सौंप दो।

सम्पूर्ण शुद्धि

मधुर माँ, शुद्ध होने का मतलब क्या है?

शुद्ध होने का मतलब क्या है? तुम सच्चे अर्थों में पूरी तरह तभी शुद्ध होते हो जब सारी सत्ता अपनी सभी गतियों और सभी तत्त्वों के साथ, एकांतिक रूप से भागवत इच्छा के साथ जुड़ी हो। वस्तुत; यही सम्पूर्ण शुद्धि है। यह किसी नैतिक या सामाजिक नियम पर या किसी प्रकार की मानसिक परिपाटी पर निर्भर नहीं होती। वह एकांतिक रूप से इस पर निर्भर है: जब सत्ता के समस्त तत्त्व और उसकी सभी गतिविधियाँ पूरी तरह एकांतिक रूप से भागवत इच्छा के साथ जुड़ी हों।

जैसे ही तुम शुद्धि की बात करते हो तुम्हारे आगे एक नैतिक कीर्तिस्तम्भ सा आ खड़ा होता है जो तुम्हारी धारणा को पूरी तरह मिथ्या बन देता है। ध्यान रखो कि आध्यात्मिक दृष्टि से नैतिक होने की अपेक्षा सामाजिक दृष्टि से नैतिक होना कहीं अधिक सरल है। सामाजिक दृष्टि से नैतिक होने के लिए केवल इतना ध्यान रखना काफी है कि तुम कोई ऐसी चीज न करो जिसे दूसरे पसंद न करते हों। यह कुछ कठिन हो सकता है, पर असंभव नहीं है; और, जैसा कि मैंने कहा, यह कहते हुए भी आदमी कपट और अशुद्धि का पुतला हो सकता है। जब कि आध्यात्मिक दृष्टि से शुद्ध होने का मतलब है एक ऐसी जागरूकता, ऐसी चेतना, ऐसी निष्कपटता जो हर कसौटी पर खरी उतरे।

यहाँ मैं तुम्हें एक चीज के बारे में सावधान कर दूँ... ऐसे लोगों के बारे में जो अपनी प्राणिक चेतना में रहते हैं और कहते हैं: "मैं नैतिक नियमों से ऊपर हूँ, मैं एक उच्चतर नियम का अनुसरण करता हूँ, मैं समस्त नैतिक नियमों से मुक्त हूँ।" वे ऐसी बात इसलिए कहते हैं क्योंकि वे सब एक प्रकार की अवधैता में रस लेना चाहते हैं। तो, इन लोगों में दोहरी अशुद्धि होती है; उनमें आध्यात्मिक अशुद्धि तो होती ही है, साथ में सामाजिक अशुद्धि भी होती है। और साधारणत: इन लोगों की अपने

बारे में बहुत अच्छी राय होती है। ये लोग बेजोड़ ढिठाई के साथ अपने ढंग से अपनी इच्छा के अनुसार अपना जीवन बिताने का दावा करते हैं। हमें ऐसे लोगों की जरूरत नहीं। लेकिन सामान्यत: जिन लोगों को बदलना मुझे बहुत कठिन लगा वे बहुत माननीय लोग थे। मुझे कहते हुए खेद होता है, लेकिन औरों की अपेक्षा माननीय व्यक्तियों में मुझे बहुत ज्यादा कठिनाई का सामना करना पड़ा है। क्योंकि उनकी अपने बारे में इतनी अच्छी राय थी कि उन्हें खोलना असंभव था। लेकिन सच्ची चीज कठिन है। यानी, तुम्हें बहुत जागरूक, बहुत आत्मसंयत और बहुत धीर होना चाहिए और तुम्हारे अंदर अखूट सदभावना भरी होनी चाहिए । तुम्हें कभी नम्रता की एक छोटी लेकिन पर्याप्त मात्रा लेने में लापरवाही न करनी चाहिये और तुम्हें अपनी सचाई और निष्कपटता से कभी संतुष्ट न होना चाहिए । इसकी चाह हमेशा अधिक, और अधिक होती रहनी चाहिए ।

मुक्त होने का अधिकार

प्राय: ही अपने लेखों में, विशेषकर 'योग-समन्वय' में, श्रीअरविन्द उन लोगों की धारणा के विरुद्ध हमें सावधान करते हैं जो लोग यह विश्वास करते हैं कि अपने ऊपर कोई यथार्थ संयम रखे बिना भी वे योग-साधना कर सकते हैं। ये सभी प्रकार की अंत:प्रेरणाओं को ग्रहण करते हैं और फलत: एक खतरनाक असंतुलन की स्थिति में जा पहुँचते हैं जिसमें उनकी सभी दबी, ढकी और गुप्त कामनाओं को इस बहाने खुलकर क्रीड़ा करने दिया जाता है कि वे सामान्य परंपराओं तथा सामान्य तर्क-बुद्धि से मुक्त हो चुके हैं।

मनुष्य केवल ऊँचाइयों तक ऊपर उठकर ही, मानवीय आवेगों से बहुत ऊपर जाकर ही मुक्त हो सकता है। तुम्हें मुक्त होने का अधिकार केवल तभी प्राप्त होता है जब तुम एक उच्चतर, अंहकारशून्य स्वंतत्रता को अधिकृत कर लेते हो तथा सभी कामनाओं तथा आवेगों से छुट्टी पा लेते हो।

लेकिन जो लोग बहुत बुद्धिवादी हैं और सामान्य सामाजिक नियमों के अनुसार बहुत नैतिक हैं उन्हें यह कभी विश्वास नहीं करना चाहिए कि वे ज्ञानी हैं, क्योंकि उनका ज्ञान एक भ्रम ही होता है और उसमें कोई गंभीर सत्य नहीं होता।
विधि-विधानों को तोड़ने की योग्यता प्राप्त करने के लिए तुम्हें उनसे ऊपर उठ जाना चाहिए, रूढ़ियों की उपेक्षा करने के योग्य बनने के लिए तुम्हें उनसे ऊपर जाना चाहिए, सभी कायदे-कानूनों की अवज्ञा करने की क्षमता पाने के लिए तुम्हें उनसे ऊपर जाना चाहिए । और इस स्वतंत्रता का उद्धेश्य कभी कोई स्वार्थपूर्ण, व्यक्तिगत वस्तु, किसी महत्वाकांक्षा की तृप्ति या बड़प्पन की भावना रखकर, अपने दल से ऊपर उठ जाने के लिए और अनुग्रहपूर्वक उसकी ओर दृष्टिनिक्षेप करने के लिए, दूसरों के प्रति घृणाभाव का पोषण कर, अपने व्यक्तित्व को महत बनाना नहीं होना चाहिये। जब कभी तुम अपने अंदर बड़प्पन की इस भावना को अनुभव करो और दूसरों की ओर विद्रूप दृष्टि से, तुच्छ भाव के साथ ताको और मन में यह कहो: " मैं अब उस जाति का नहीं हूँ," तब अपने ऊपर विश्वास मत करो; क्योंकि उसी क्षण तुम पथ-भ्रष्ट हो जाते हो और खाई में लुढ़क जाने का खतरा उठाते हो।

स्वतंत्रता: आत्म-रंजन नहीं

यदि कोई इस पड़ाव से (नैतिक पूर्णता के) गुज़रे बिना दूसरी तरफ जाने की कल्पना करता है तो वह भारी भूल कर बैठने का गुरुतर जोखिम उठाता है..... अपनी निचली प्रकृति के संबंध में पूर्ण दुर्बलता को पूर्ण स्वतंत्रता समझ बैठता है। नैतिक पूर्णता के इस आदर्श को कुछ समय के लिए, चाहे वह कितना ही थोड़ा क्यों न हो, उपलब्ध किए बिना मनोमय पुरुष से----चाहे वह पूर्णतम और सर्वाधिक असाधारण ही क्यों न हो—सच्चे आध्यात्मिक जीवन की ओर जाना लगभग असंभव है। ऐसे बहुत से लोग हैं जो पथ को छोटा बनाने की चेष्टा करते हैं और बाह्य प्रकृति की सब कमजोरियों पर विजय पाने से पहले अपनी आतंरिक स्वंतत्रता का दावा करना चाहते हैं---- वे अपने को छलने का भारी खतरा मोल लेते हैं। सच्चा आध्यात्मिक जीवन

और पूर्ण स्वतंत्रता उच्चतम नैतिक उपलब्धियों से कही अधिक उच्चतर चीजें हैं, लेकिन तुम्हें उस तथाकथित स्वतंत्रता नाम की चीज से अवश्य बचना चाहिये जो केवल आत्मरंजन और सब नियमों की अवज्ञा है।

मनुष्य को ऊपर उठना चाहिये, हमेशा ऊपर, और ऊपर, उन्नततम मानवजाति ने जो कुछ प्राप्त किया है उससे कम उन्नत नहीं।सच्ची आध्यात्मिकता में, जो सीमाओं से बँधी नहीं है, जो 'अनंतता' और 'शाश्वतता' में सर्वांगीण रूप से वास करती है, प्रवेश पाने के लिये अपने आध्यात्मिक पंख खोलने से पहले और उन सब चीजों को ऊपर से इस प्रकार देखने से पहले कि वे अभी तक व्यक्तिगत रुप से संबंधित हैं, मनुष्य में अनायास ही वह सब बन जाने की क्षमता होनी चाहिये जिसे मनुष्यजाति ने उच्चतम, सुन्दरतम, पूर्णतम, अधिक-से-अधिक अनासक्त, अधिक-से-अधिक विस्तृत और अधिक-से-अधिक श्रेष्ठ माना है।

स्वतंत्रता और तपस्या

समस्त आसक्ति से दूर रहने का अर्थ आसक्ति के अवसरों से भाग जाना नहीं है। वे सब लोग जो अपने आपको तपस्वी कहते हैं, केवल स्वयं ही आसक्ति से नहीं भागते वरन दूसरों से भी कहते हैं कि कि वे संसार में जीवन-यापन का प्रत्यन न करें! मुझे यह बड़ा स्पष्ट प्रतीत होता है। जब तुम्हें एक वस्तु को न अनुभव करने के लिये उससे भाग जाने की आवश्यकता होती है तो इसका अर्थ है कि तुम उसी स्तर पर हो, उससे ऊपर नहीं। वह सब जो दबाता है, पंगु एवं क्षीण बना देता है तुम्हें स्वतंत्र नहीं बनाता। जीवन की समग्रता में, उसके सब संवेदनों में व्यक्ति को स्वतंत्रता की अनुभूति होनी चाहिये।

वस्तुत: मैने इस विषय पर शुद्ध रूप से भौतिक स्तर पर विशद अध्ययन किया है....। सब प्रकार की संभव भ्रांतियों से बचने के लिये व्यक्ति की प्रवृति भ्रांतियों के सभी अवसरों को दूर हटाने की होती है। उदाहरणार्थ, यदि तुम व्यर्थ के शब्द नहीं कहना चाहते हो तो तुम बोलना बंद कर देते हो; जो लोग मौनव्रत लेते हैं वे सोचते हैं कि वे अपनी वाणी पर नियंत्रण रख रहे हैं, यह सच नहीं है! यह केवल बोलने के अवसर को दबाना और परिणामस्वरूप बेकार बातों को रोकना हुआ। भोजन के साथ भी यही बात है: वही भोजन खाना जो आवश्यक हो.....। लोगों की स्वाभाविक प्रवृत्ति उपवास की होती है---यह एक भ्रांति है!

कहीं हम अपने कार्यों में कोई भूल न कर बैठें, इस भय से कार्य करना छोड़ देते हैं, बोलने में कोई भूल न हो, इस डर से बोलना बन्द कर देते हैं; हम खाने के आनन्द के लिये न खायें, इस डर से खाना बन्द कर देते हैं----यह स्वसतंत्रता नहीं, यह तो केवल बाह्य अभिव्यक्ति को कम-से-कम करना है, और इस सबका प्राकृतिक अंत निर्वाण होता है। किन्तु यदि भगवान केवल निर्वाण ही चाहते तो यहाँ केवल निर्वाण ही होता! यह स्पष्ट है कि वे समस्त विरोधों के सह-अस्तित्त्व का विचार रखते हैं और उनके लिये यह सब एक समग्रता का आंरभ है। तब प्रत्यक्षत:, यदि व्यक्ति यह समझे कि वह इसी के लिये बना है तो वह 'उनकी' केवल एक अभिव्यक्ति का अभाव। किन्तु यह भी एक सीमा है। और यही उनकी प्राप्ति का एकमात्र मार्ग नहीं है, बल्कि जरा भी नहीं है!

यह एक बड़ी प्रचलित प्रवृत्ति है और संभवतया एक बड़े प्राचीन सुझाव से या शायद किसी अभाव से अथवा अयोग्यता से उत्पन्न हुई है---अर्थात्, अपनी आवश्यकताओं को कम, कम, बहुत ही कम करते जाना, अपनी गतिविधियों को कम करना, अपने शब्दों को कम करना, अपना भोजन कम करना, अपना सक्रिय जीवन कम करना, और तब सबकुछ बड़ा संकुचित हो जाता है। कोई भी गलती न करने की अभीप्सा में, व्यक्ति उसे करने के सभी अवसरों को दबा डालता है, यह कोई इलाज नहीं है। किन्तु दूसरा रास्ता बहुत, बहुत अधिक कठिन है।

(मौन)

न, समाधान केवल भागवत प्रेरणा के अनुसार कार्य करने में है, भागवत प्रेरणा के अनुसार ही बोलना, भागवत प्रेरणा के अनुसार ही खाना। यही कार्य कठिन है, क्योंकि स्वभावत: फिर तुम भागवत प्रेरणा के साथ अपनी व्यक्तिगत प्रेरणाओं का घाल-माल कर देते हो। मेरे विचार में त्याग के सभी विचारकों का विचार यह था कि जो कुछ बाहर से या नीचे से आये उसे दबा दिया जाये ताकि यदि ऊपर की कोई वस्तु अभिव्यक्ति हो तो व्यक्ति उसे ग्रहण करने की अवस्था में रह सके। किंतु सामूहिक दृष्टिकोण से यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो हजारों वर्ष ले सकती है। व्यक्तिगत दृष्टिकोण से यह संभव है; किंतु तब व्यक्ति को सच्ची प्रेरणा ग्रहण करने की अभीप्सा को अक्षुण रूप में बनाये रखना चाहिये—"पूर्ण मुक्ति" की अभीप्सा को नहीं, बल्कि भगवान के साथ "सक्रिय" तादात्मय की अभीप्सा को, दूसरे शब्दों में, जो वे चाहें वही चाहना, जो वे चाहें वही करना, केवल उन्हीं के द्वारा, उन्हीं में अपना अस्तित्त्व रखना। तब व्यक्ति त्याग की विधि का प्रयोग कर सकता है, किन्तु यह उस व्यक्ति की विधि है जो दूसरों से अपना संबंध विच्छेद करना चाहता है। क्या इस दशा में कोई समग्रता रह सकती है? मुझे यह संभव प्रतीत नहीं होता।

व्यकित जो करना चाहता है उसकी सार्वजानिक रूप में घोषणा करने से उसे काफी सहायता मिलती है। यह बात कई विरोधी को, भ्रमों और संघर्षों को उत्पन्न कर सकती है, किन्तु इसकी क्षति बहुत हद तक, यदि ऐसा कहा जा सके, सार्वजनिक 'प्रत्याश' से पूर्ण हो जाती है क्योंकि दूसरे लोग तुमसे कुछ आशा रखते हैं। निश्चित रूप से यही सन्यासियों के गेरुआ वस्त्रों का कारण है, अर्थात्, लोगों को सूचना देना। स्पष्ट ही यह बात तुम्हें कुछ लोगों की घृणा एवं दुर्भावना का पात्र बना सकती है किन्तु ऐसे लोग भी हैं जो यह अनुभव करते हैं कि इसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये, इसकी ओर अधिक ध्यान नहीं देना चाहिये, क्योंकि इससे उनका कुछ मतलब नहीं है।पाता नहीं क्यों यह मुझे सदा दिखावा ही प्रतीत हुआ है---दिखावा नहीं भी हो सकता और कुछ लोगों में ऐसा नहीं भी होता है, किंतु फिर भी लोगों से यह कहने का एक तरीका है: "जरा देखो, मैं क्या हूँ।" और मैं कहती हूँ कि इससे सहायता मिल सकती है। पर इसमें असुविधाएँ भी है।

जो कुछ भी हो यह अभी है बचकानापन ही। ये सब साधन हैं, अवस्थाएँ और सोपान हैं, किन्तु.... सच्ची स्वतंत्रता का अर्थ है समस्त वस्तुओं से मुक्ति---सब साधनों से भी मुक्ति।

(मौन)

यह एक प्रतिबंध है, एक संकीर्णता है, जब कि 'सत्य वस्तु' है उन्मुक्ता, विस्तार और समग्रता के साथ तादात्मय।
जब तुम अपने आपको घटाते हो, घटाते हो, घटाते ही चले जाते हो तो तुम्हें यह अनुभव नहीं होता कि तुम अपने आपको खो रहे हो, बल्कि तुम्हें यह भय ही नहीं रहता कि तुम अपने आप को खो भी सकते हो-तुम एक ठोस और कड़ी वस्तु बन जाते हो। किन्तु यदि तुम विस्तार का तरीका चुनो—अधिक-से-अधिक विस्तार का—तो तुम्हें अपने आपको खो देने का भय नहीं होना चाहिये।
पर ऐसा करना कहीं अधिक कठिन है।

स्वतंत्रता और सेवा-भाव

बाहरी तौर पर यह कल्पना भी नहीं की जा सकती कि एक ही समय में कोई स्वतंत्रता और दासता में कैसे रह सकता है, किन्तु मेल से पार्थिव जीवन की एक बहुत ही सुखी अवस्था का निर्माण करती है।
जीवन के संपूर्ण विकास के लिये स्वतंत्रता एक प्रकार से व्यक्ति की नैसर्गिक माँग है, एक आवश्यकता है। अपने मूल रूप में यह उच्चतम चेतना की पूर्ण

श्रीअरविन्दायन

- तपस्या की गुफा –पांडिचेरी

मूल –डॉक्टर निरोदबरन, हिन्दी रूपान्तर –शंकर प्रसाद खरे

सबसे पहले यह जिज्ञासा हो सकती है कि श्रीअरविन्द को पांडिचेरी जाने के लिये क्यों कहा गया? हाँ ! तो श्रीअरविन्द ने हम लोगों को यह उत्तर दिया था कि यह तो भगवान का आदेश था, उसी प्रकार जिस तरह चन्द्रनगर जाने का आदेश था इस आदेश पर उन्हें प्रश्न करने का कोई अधिकार नहीं। एक बात अवश्य दोनों स्थानों के संबंध में समान है, वह यह कि दोनों फ्रांसीसी राज्य में थे , इसलिए ब्रिटिश सरकार का सीधा अधिकार उन पर नहीं था । राजनैतिक सुविधा का लाभ उठाते हुए बहुत से राजनैतिक शरणार्थी पांडिचेरी में आकर शरण ले चुके थे जिनमें कवि सुब्रह्मण्यम् भारती भी थे । उन लोगों ने देश निकाले लोगों का एक समुदाय बना लिया था और इस अधिक सुविधाजनक स्थान से गोपनीयता से प्रचार कर रहे थे । तुम समझ सकते हो कि श्रीअरविन्द को इसीलिए उनके पास भेजा था। तो यह बाहरी कारण है । लेकिन आदेश के अन्तर्गत अन्य कई अधिक महत्वपूर्ण कारण होते हैं । भगवान का, गुरु का केवल एक साधारण शब्द भी मानव बुद्धि से परे अनेक अर्थों से भरा होता है । क्योंकि वे त्रिकाल दृष्टि वाले हैं मैं उस विशेष समय में जो घटित हुआ उसीसे संबधित हूँ ।

देखें , मनी ने इस बीच में श्रीअरविन्द के पांडिचेरी में रहने के लिये क्या व्यवस्था की । वह श्रीनिवासाचारी से मिले , उन्हें परिचय पत्र दिया और बताया कि दिनाँक 4 अप्रैल को श्रीअरविन्द 'डूप्ले' नामक जहाज से यहाँ पहुँच रहे हैं । उनके ठहरने के लिए कुछ व्यवस्था करना आवश्यक है । मनी को उन्हें (श्रीनिवासाचारी को) और भारती को यह विश्वास दिलाना कठिन हो गया कि श्रीअरविन्द पांडिचेरी में शरणार्थी बनकर आने वाले हैं । उन्होंने मनी को जासूस समझा क्योकि उन्होंने सोचा कि "श्रीअरविन्द जैसे महान् नेता एक छोटे और असुरक्षित पांडिचेरी जैसे नगर में कैसे शरण लेना चाहेंगे ?" लेकिन उन्होंने अपनी शंका को छुपाए रखा और मनी को यह विश्वास दिलाया कि वे श्रीअरविन्द के आने पर उनका भव्य स्वागत समारोह करेंगे । इस पर मनी को और चिंता हुई और उन्हें यह समझाने के लिए बहुत प्रयास करना पड़ा कि तब तो यह समाचार प्रकाशित हो जाएगा । अंत में मनी का हार्दिक अनुनय सुनकर उन्होंने अपना विचार छोड़ दिया और 3 अप्रैल को एक मकान दिखाया । उसका पर्यावरण गंदा था और कमरा भी अंधकार एवं गंदा ।

4 अप्रैल 1910 को डूप्ले जहाज शाम को चार बजे पांडिचेरी पहुँच गया। मनी और श्रीनिवासाचारी एक ग्रामीण नाव को लेकर उसके पास पहुँचे और देखा कि श्रीअरविन्द व विजय जहाज के तख्ते पर उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं । श्रीनिवासाचारी उन्हें गाड़ी में बिठाकर एक बस्ती की ओर ले गए और मनी सामान के साथ एक ठेलागाड़ी में उनके पीछे –पीछे गए। वहाँ पहुँचने पर मनी को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह तो कोई और ही तिमंजिला मकान है और श्रीअरविन्द को एक छोटे साफ़ कमरे में एक कुर्सी पर बैठाया गया है। इस पहेली का समाधान उन्हें दो साल बाद मिला । मनी को दूसरा घर इस शंका की वजह से दिखाया गया था कि संभवत: वह श्रीअरविन्द के संदेशवाहक न होकर कहीं पुलिस के जासूस हों। ऐसा होने पर उनको अच्छा सबक सिखाते ।

इस तरह इस मकान में जो कि पांडिचेरी के एक धनी नागरिक का था, स्थायी रूप से रहने की व्यवस्था कर ली गई थी । विवेकानन्द भी दक्षिण भारत की यात्रा के समय इस मकान के मेहमान थे। श्रीअरविन्द के इधर आने का समाचार ब्रिटिश अधिकारियों को उनकी रवानगी के बाद सप्ताह भर के अंदर ही लग गया। श्रीअरविन्द फौरन गहरी साधना में डूब गए । उन्होंने मनी और विजय को कह दिया कि वे बिल्कुल एकांत में रहेंगे और किसी से भी नहीं मिलेंगे सिवाय किसी विशेष कारण के । वे लंबे समय से एकांत जीवन के अभ्यस्त तो हो ही गए थे । यह अतिरिक्त सावधानी पुलिस के ध्यान से बचने के लिये आवश्यक थी । मनी और विजय उनकी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे। बाद में वे श्रीनिवासाचारी और

तमिल कवि सुब्रह्मण्यम् भारती के संपर्क में आए जो उनके घनिष्ट मित्र बन गए ।

करीब एक सप्ताह के बाद पॉल रिचार्ड नाम के एक प्रसिद्ध विद्वान फ्रांस से वहाँ के राजनैतिक चुनाव के काम से आए । माताजी के शब्दों में , " चूँकि उन्हें गुह्य विद्या और आध्यात्मिकता में रुचि थी उन्होंने पांडिचेरी आने व खोजने के अवसर का लाभ उठाया। वे एक 'मास्टर' योगी की खोज कर रहे थे । वे यहाँ पहुँचे । पहला काम उन्होंने अपने आप को राजनीति में सक्रिय होने के बदले यह बताया कि , "मै एक योगी की तलाश में हूँ ।" किसी ने उनसे कहा , "आप भाग्यशाली हैं । एक योगी अभी –अभी यहाँ आए हैं । ' ' किसी ने श्रीअरविन्द को बताया , "एक फ्रांसीसी व्यक्ति आपसे मिलना चाहते हैं । ' ' श्रीअरविन्द पूर्णतया संतुष्ट नहीं थे पर यह संयोग उन्हें उत्साहपूर्ण दिखा और वे उनसे मिले ।

उत्तर योगी – उत्तर भारत से आए हुए योगी :-

योगियों के बीचे में हमेशा ही सूक्ष्म संबंध रहता है और यही उनका वास्तविक परस्पर परिचय होता है । मैं तुम्हें इसका एक ज्वलंतत उदाहरण दूँगा । दक्षिण भारत में नगाई – जपता नाम के एक प्रसिद्ध योगी थे । जब वे अपना शरीर छोड़ने वाले थे तब उन्होंने अपने शिष्यों को बुलाया । उनमें से एक राम स्वामी आयंगर नाम का धनी जमींदार था । उसने गुरु से पूछा, "आप की उनुपस्थिति में हम लोगों का भार कौन सँभालेगा ?"

गुरु कुछ समय तक मौन समय तक रहे, फिर बोले , " एक योगी शीघ्र ही उत्तर भारत से इस भाग में आएँगे । तुम लोग उनकी सहायता ले सकते हो । "

शिष्य ने प्रश्न किया , " लेकिन बहुत से योगी आते – जाते रहते हैं । हम लोग उन्हें कैसे पहचानेंगे ?"
गुरु ने उत्तर दिया , " दो चिन्ह हैं जिनसे तुम लोग उन्हें पहचान सकते हो, पहला यह कि वे यहाँ शरण लेने आएँगे , दूसरा यह कि वे अपनी तीन बातों कि लिये पहचाने जाएँगे ।"

ये तीन बातें" वे तीन पागलपन" हैं कि जिनके संबंध में मृणालिनी के नाम श्रीअरविन्द के पत्र में हमने बताया है । पुलिस ने इन गुप्त पत्रों को बरामद कर लिया था और कोर्ट में श्रीअरविन्द के विरुद्ध सबूत के रूप में प्रयोग किया था इस तरह से इन पत्रों की सामग्री सर्वविदित हो गई । ध्यान रखो, जपता ने श्रीअरविन्द को कभी नहीं देखा था फिर भी अपने योगिक ज्ञान के द्वारा उन्होंने अपने शिष्यों को सही निर्देश दिए थे ।

इन निर्देशों के सहारे आयंगर ने श्रीअरविन्द को तलाश लिया। वह श्रीअरविन्द से गुप्त रूप से मिले और उन्हें अपने गुरु का अंतिम संदेश बताया और वह स्वयं श्रीअरविन्द के गहरे भक्त बन गए । उन्होंने श्रीअरविन्द की पुस्तक " योगिक साधना" के प्रकाशन का पूरा खर्च उठाया । पुस्तक पर लेखक का नाम उत्तर योगी छापा गया । उसकी विषय वस्तु भी रहस्यपूर्ण थी क्योंकि वह "स्वचलित लेखन"की देन थी जिसके विषय में हम तुम्हें बता चुके हैं ।

श्रीअरविन्द को केवल कलम लेकर बैठ जाना होता था और बिना किसी विचार या चिंतन के जो कुछ भी सत्त निर्धरित होता था वे लिखते जाते थे मानो कोई उन्हें यंत्र के रूप में प्रयोग कर रहा हो । उन्होंने बताया था कि हर बार लिखना आरंभ करते समय व बंद करते समय वे राम मोहन राय का चित्र देख सकते थे । इसलिये राम मोहन राय की आत्मा इस पुस्तक की लेखक कही जा सकती है – श्रीअरविन्द केवल यंत्र थे । बाद में श्रीअरविन्द ने इसका प्रकाशन बंद करा दिया क्योंकि यह उनके योग के सार का वर्णन नहीं करती थी । इस समय आयंगर ने श्रीअरविन्द को व्यक्तिगत रूप से आर्थिक सहायता भी दी ।

उपवास का प्रयोग :-

इस घर में एक और घटना हुई जो कथनीय है । किसी कारणवश श्रीअरविन्द ने अचानक उपवास प्रारंभ किया जो लगातार 23 दिन तक चला । पहले भी उन्होंने दस दिन तक उपवास किया था । लेकिन जो अत्यंत असाधारण बात थी वह यह थी कि उपवास तोड़ते समय उन्होंने सामान्य रूप से पूरा भोजन लिया। यह चिकित्सा शास्त्र के विरूद्ध और खतरनाक समझा जाता है । उपवास तोड़ते समय कम मात्रा में भोजन करना आवश्यक होता है अन्यथा भोजन प्रणाली में भयानक गड़बडियाँ पैदा होने की संभावना रहती है । पर श्रीअरविन्द बिल्कुल ठीक रहे , उन्हें कोई भी हानि नहीं हुई ।

तुम्हें यह जानने की जिज्ञासा होगी कि आखिर उन्होंने उपवास किसलिए किया । क्या वह केवल दिखावे मात्रा के लिए था या उसके पीछे कोई उद्देश्य था? श्रीअरविन्द ने कभी भी कोई काम दिखावे के लिये नहीं किया । उनकी टिप्पणियों से यह समझा जा सकता है कि वह यह प्रयोग करके देखना चाहते थे कि क्या मनुष्य के जीवित रहने के लिए भोजन आवश्यक है ? और इस समस्या के लिए उन्होंने करीब तेईस दिनों का उपवास किया, "मैंने बहुत कुछ समस्याओं का समाधान कर लिया था । मैं हमेशा की तरह प्रतिदिन आठ घंटे चलता फिरता रहा, मैंने अपना मानसिक काम और साधना भी पूर्ववत चालू रखी और मैंने देखा कि 23 दिनों के बाद भी मैं जरा भी कमजोर नहीं हुआ था और शरीर में जो ठोस भौतिक तत्व कम हो गया था उसे पूरा करने के लिये मुझे कोई हल नहीं मिला । "

लेकिन इसकी कल्पना करो कि कैसे इस तरह के उपवास भौतिक क्षमता को बढ़ाए रखते हुए और प्रतिदिन आठ घंटे चलना –फिरना जारी रखते हुए संभव है । श्रीअरविन्द ने बताया था कि शरीर के लिये ईंधन के रूप में भोजन पर निर्भर रहने के बदले प्राणिक जगत से शक्ति को खींचा जा सकता है । यह भी एक यौगिक प्रक्रिया है ।

पांडिचेरी जीवन की कठिनाईयाँ :-

करीब छ: माह के बाद श्रीअरविन्द ने शंकर चैटी का घर छोड़ दिया । इस अवधि में वे एक बार नहीं निकले । पुलिस और पब्लिक दोनों को यह बात मालूम हो गई थी कि उन्होंने पांडिचेरी में शरण ले ली है । इसलिए पुलिस उन पर कड़ी नजर रखती थी ।

इस मकान को छोड़ने के बाद चार साल के अंदर उन्हें चार – पाँच मकान बदलने पड़े । कारण था आर्थिक कठिनाई । इसके अतिरिक्त वे अकेले तो थे नहीं । उनके साथ तीन चार नौजवान साथी थे । वे सब कई वर्ष तक कठोर आर्थिक कष्टों से गुजरे – दो छोटे कमरे , नाम मात्र का फर्नीचर , फर्श पर शयन करना, केवल एक ही तौलिया जिसके उपयोग के लिए श्रीअरविन्द की बारी अन्त में आती थी । दैनिक जीवन की यही व्यवस्था थी । बाद में श्रीअरविन्द के लिए एक पुरानी कैम्प – कौट की व्यवस्था हुई । वह जीवन सचमुच में स्पार्टन जीवन जो कठोरता व नियमितता से युक्त जीवन में विशेष है – से भी अधिक था किंतु वे उससे किंचितमात्र भी विचलित नहीं हुए ।

एक बार श्रीअरविन्द ने एक मित्र को विनोदपूर्वक लिखा , " इस समय स्थिति यह है कि हमारे हाथ में डेढ़ रूपया के करीब है ..... निश्चय ही भगवान पूरा करेंगे लेकिन भगवान ने आखिरी क्षण तक प्रतीक्षा कराने की शर्त रखी है । मुझे इतना तो विश्वास है कि वे हमको भारती की तरह शून्य मात्रा में गुजर करना नहीं सिखाना चाहते। "

बाहर से आर्थिक सहायता भेजना भी संभव न था क्योंकि श्रीअरविन्द जैसे क्रांतिकारी नेता को कोई मदद करेगा तो पुलिस क्रुद्ध होगी । सरकार को इस बात पर कभी विश्वास नहीं हुआ कि श्रीअरविन्द योगाभ्यास करने पांडिचेरी आए हैं । उनके अनुसार ऐसी घोषणाएँ पुलिस को धोखा देने के लिये केवल चालाकियाँ हैं , असली उद्देश्य तो पाण्डिचेरी से गुप्त रुप क्रांति आंदोलन चलाना होगा – बम, पिस्तौलें इकट्ठे करना और उन्हें अग्रेजी राज्यधीन भारत में भेजना होगा । सरकार की राय में श्रीअरविन्द भारत में सबसे खतरनाक व्यक्ति थे । इसलिए वे लोग सोते - जागते यही प्रयास कर रहे थे किसी प्रकार उन्हें पांडिचेरी से हटा दिया जाए। इसके लिए उन्होंने षड़यंत्र रचे । लेकिन जिसे भगवान का संरक्षण प्राप्त है उसे

कौन नुकसान पहँचा सकता है । जो भी हो, मैं तुम्हें ऐसे एक – दो बचकाने षड़यंत्रों को वर्णन सुनाऊँगा – तुम उन्हें नाटकीय कहोगे –वे दिलचस्प हैं । तुम देखोगे कि वे कितनी दुष्टता से अभिप्रेरित थे ।

जासूसों की कहानी – मूल्य षड़यंत्र :-

सरकार द्वारा इस तरह के दुष्ट प्रयासों की कम से कम तीन कहानियाँ तो जानी –मानी हैं –यद्यपि सभी अत्यंत रोमांचक हैं। ब्रिटिश सरकार ने अपना जाल दूर –दूर तक फैला दिया था, मद्रास में, स्टेशन पर और पांडिचेरी की सड़कों पर जासूस ही जासूस भरे पड़े थे । वे सामान्य नागरिक दिखते थे पर वास्तव में वे जासूस , सी. आई. डी. थे । इसके अतिरिक्त उन दिनों पांडिचेरी में स्थानीय गुंडों का प्रभाव अधिक था, विशेष रूप से राजनीतिक चुनाव के समय में तो यहाँ नर्क उतर आता था : हत्याएँ पराकाष्ठा तक पहुँच जाती थीं । ठीक चुनाव अभियान के पूर्व ब्रिटिश राज्य ने अपने सबसे निकृष्ट षड्यंत्र को कार्यान्वित करने के लिए उपयुक्त अवसर चुना।

पुलिस ने एक प्रभावशाली राजनैतिक नेता के साथ यह गुप्त मंत्रणा की कि उसके गुंडे किसी प्रकार श्रीअरविन्द को उठा ले जाएँ और फ्राँसीसी भारत के किनारे पहुँचा दें और वहाँ ब्रिटिश सरकार किसी झूठे आरोप पर गिरफ्तार कर लेगी । श्रीअरविन्द के साथियों को इस षडयंत्र की गंध मिल गई और उन्होंने लड़कर मुकाबला करने का निश्चय किया । वे अपने एकमात्र अस्त्र ऐसिड की बोतलों को लेकर पूरी तैयारी के साथ लड़ने के मूड में थे । वे सारी रात जागते रहे किन्तु यह आश्चर्य की बात हुई कि कोई गुंडा नहीं आया । ऐसा इसालिए हुआ कि नेता स्वयं अपने विरोधियों द्वारा राजनैतिक अपराधों की शिकायतों के कारण पकड़े जाने की स्थिति में पड़ गया था । इसलिये उसे मद्रास भागना पड़ा और अपना षड़यंत्र छोड़ना पड़ा ।
हम पृथ्वी के इतिहास के एक निर्णायक समय में है । यह अतिमानस के आने के लिये तैयारी कर रही है और इसके कारण जीवन का पुराना तरीका अपना मूल्य खो रहा है । व्यक्ति को निडरता से अपने आपको भविष्य की ओर फेंक देना चाहिए । चाहे इसकी नई माँगें क्यों न हों । जो तुच्छताएँ एक समय में बरदाश्त की जाती थीं, अब नहीं की जातीं । व्यक्ति को अपने आपको विस्तृत करना चाहिए ताकि जो कुछ जन्म लेने वाला है वह उसे पा सके ।

" यह ईश्वरीय उपस्थिति है जो जीवन को मूल्य देती है. ईश्वरीय उपस्थिति ही सभी शांति , सभी आनंद , सभी सुरक्षा का स्रोत है . आप अपने आप में इस उपस्थिति का पता लगाएं और आपकी सभी कठिनाइयां गायब हो जाएंगी ."

-श्रीमाँ

मनोविज्ञान

- मुरारीलाल पराशर

जो मनोविज्ञान हमारे कालेजों और यूनीवर्सिटियों में पढ़ाया जाता है वह पाश्चात्य मनोविज्ञान का अनुवाद मात्र है। आजकल का विद्यार्थी यह समझता है कि पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने ही मनोविज्ञान का ज्ञान संसार को दिया। मनोविज्ञान की प्राचीन परिभाषा थी मन की क्रियाओं का ज्ञान। आजकल यह माना जाता है कि मनोविज्ञान के अंतर्गत मानव प्रकृति के सब दृष्ट-आदृष्ट व्यवहारों की गणना होनी चाहिए । मनोविज्ञान की यह परिभाषा अधिक व्यापक है और इस परिभाषा को दृष्टिगोचर रखते हुए हमें देखना है कि भारतीय शास्त्रकारों ने मनोविज्ञान के विषय में क्या लिखा है?

भारत के दार्शनिकों और पाश्चात्य दार्शनिकों में एक बड़ा भेद यह रहा है कि भारत में दर्शन-शास्त्र दर्शन-ऋषियों और तत्ववेत्ताओं के अपने अनुभवों पर आधारित है और पाश्चात्य देशों के दर्शन-शास्त्र बुद्धि की कलाबाजी है। भारत में जीवन की समस्या को समझना ही मानव जीवन का लक्ष्य माना गया और इस प्रयास में जुटे हुए व्यक्तियों का बहुत आदर - सम्मान किया गया। हमारे पूर्वज समझते थे कि जब तक जीवन के सार को न समझा जाए तब तक उसकी समस्याओं को समझना और हल करना असंभव है। ऐसे लोगों के लिए मनोविज्ञान का ज्ञान होना अत्यावश्यक था। हमारा साहित्य ऋषियों और योगियों की अनुभूतियों से भरा हुआ हैं। उन अनुभूतियों के आधार पर महाकवियों ने रचनाएँ की, नाटक लिखे, उपनिषदों जैसे आध्यात्मिक ग्रंथ लिखे और षट्दर्शन शास्त्र लिखे।

पूर्ण मनोविज्ञान की जानकारी के लिए हमें मनुष्य की प्रकृति, प्रकृति की भिन्न-भिन्न प्रवृतियों और उनके व्यवहार का ज्ञान होना चाहिए ; कहा गया है "यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे" जो कुछ मनुष्य के पिण्ड में वही ब्रह्माण्ड में है। अतः मनुष्य की प्रकृति के व्यवहार को समझने के लिए ब्रह्माण्ड प्रकृति की गतिविधियों को भी जानना और समझना पड़ेगा। आधुनिक मनोविज्ञान अभी अपनी किशोर अवस्था में से गुज़र रहा है इसलिए यह अभी अधूरा ही है। फ्रॉयड एडलर और जुङ्ग ने इसकी व्यापकता का विस्तार किया है, परन्तु भारत के पुराने विद्वानों और दार्शनिकों ने तो जीवन की गहराइयों तक पहुँचने का प्रयास किया था। मनोविज्ञान को यदि जीवन-ज्ञान कहा जाए तो यह अधिक ठीक होगा।

विज्ञान की प्रत्येक शाखा का ध्येय सत्य की खोज करना है। वस्तु विषय और घटनाएँ वास्तव में ऐसी नहीं होती हैं जैसी वह प्रतीत होती हैं। हमारा मन बाह्य रूप से प्रभावित हो जाता है और सत्य को खोजने का प्रयत्न नहीं करता। इस सत्य की खोज की प्रवृत्ति ने ही मनुष्य को प्रकृति के रहस्य बताए । इन रहस्यों को जानकर मनुष्य प्रकृति की शक्तियों को काबू में कर सका है और उनसे लाभ उठा रहा है। विज्ञान की सहायता से मनुष्य संसार को रावण की लङ्का बना सका है। कल्पनातीत सुख और विलास की सामग्री उसको प्राप्य है। परन्तु सामग्री के भोक्ता की दशा दयनीय है। वह एक प्रकार से इस सामग्री का दास बन गया है। यह दासता मनुष्य को अखरती है और वह इस से मुक्ति पाना चाहता है।

पहले महायुद्ध के समय से मनुष्य की दृष्टि बाह्य जगत से मन और मानव प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करने की ओर झुकी है। वह इस निष्कर्ष तक पहुँचा है कि मन की प्रकृति को समझे बिना मानव समाज की वास्तविक उन्नति नहीं हो सकती। इसलिए उसका ध्यान मनोविज्ञान की ओर झुका है। मनोविज्ञान की उन्नति में भारत बहुत योगदान दे सकता है। यदि सारे मानव समाज को कुटुंब समझा जाए तो प्रत्येक देश को इस कुटुंब का सदस्य समझना चाहिए । और कुटुम्ब में प्रत्येक सदस्य का दायित्व भी होता है। भारत के महान् पुरुषों ने मानव प्रकृति और उसकी समस्याओं को समझने का प्रयास किया।

उनके अनुसंधान के मार्ग और उनके अनुभवों और खोज से प्राप्त सिद्धियों का वर्णन हमारे साहित्य में स्थान-स्थान पर मिलता है। इन सिद्धियों को प्राप्त करने के तरीके भी बताए गए हैं। मन के बारे में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें उपनिषदों और योगशास्त्रों में दिए गए निष्कर्षों को समझना होगा और उनको मानव जीवन की समस्याओं को सुलझाने में लगाना होगा। मानसिक चेतना ही मनुष्य को पशु से भिन्न बनाती है। जितना अधिक मनुष्य अपनी प्रकृति को समझता है उतना ही वह

विकसित कहा जा सकता है, परंतु साधारण मनोविज्ञान मन के ऊपरी स्तर के व्यवहारों के बारे में बताता है। मन एक गहरे समुद्र की तरह है। उसकी गहराई में उतरने के तरीके हैं। उसकी गहराई में सुप्त शक्तियों को जगाया जाए तो मनुष्य जीवन की बहुत सी कठिनाइयाँ मिट सकती हैं।

मानव प्रकृति-मन, प्राण और शरीर-इन तीन चेतन शक्तियों का समन्वय है, मनुष्य मन-शक्ति-प्रधान जीव है। इसमें मानसिक शक्ति का अधिक विकास हो सकता है और मानसिक शक्ति प्राण और शरीर पर बहुत प्रभाव डाल सकती है। परंतु यह तीनों इस प्रकार एक दूसरे के साथ सम्मिश्रत हैं कि एक दूसरे से भिन्न नहीं हो सकतीं, इसलिए सत्य को जानने के लिए, हम इन तीनों में से किसी एक शक्ति का प्रधानतया प्रयोग कर सकते हैं, हठयोग, प्राणायाम, भक्तियोग, राजयोग तथा ज्ञानयोग-किसी एक योग के द्वारा हम सत्य, मानव-प्रकृति के सत्य को ढूँढ़ सकते हैं, योग के द्वारा सत्य को प्राप्त करके हम मानव-जीवन को किस प्रकार समृद्ध और शक्तिशाली बना सकते हैं। इसके लिए भारतीय मनोविज्ञान को जानने और समझने की अत्यधिक आवश्यकता है। आधुनिक पाश्चात्य मनोविज्ञान का ज्ञान पर्याप्त नहीं है।

आश्रम-गतिविधियाँ

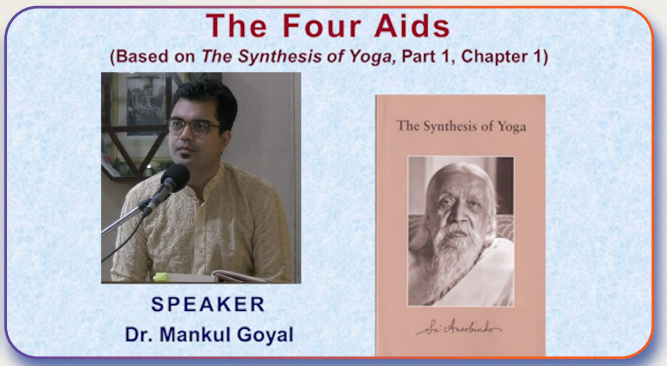

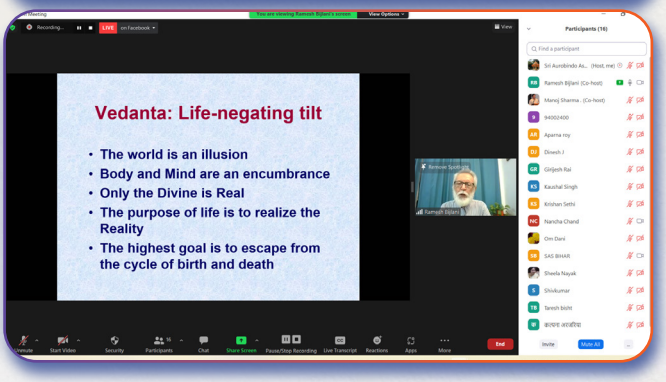

प्रति रविवार संध्य वार्ता (हिंदी)

श्रीअरविन्द के 150वें जन्म-जयन्ती वर्ष समारोह के उपलक्ष्य में प्रति रविवार संध्या समय 4:00 से 6:00 तक हिंदी वार्ताओं की श्रृंखला का ऑनलाइन आयोजन हो रहा है, इस वार्ता श्रृंखला का आयोजन श्री अरविंद आश्रम दिल्ली शाखा एवं श्री अरविंद सोसाइटी हिंदी क्षेत्रीय समिति के द्वारा किया जा रहा है।

प्रति रविवार प्रातः सत्संग

आश्रम ध्यान कक्ष में प्रति रविवार प्रातः 10:00 सत्संग का आयोजन होता है....।

वन निवास -नैनीताल में अध्ययन शिविर

श्रीअरविन्द आश्रम दिल्ली शाखा द्वारा वन निवास -नैनीताल में नियमित रूप से अध्ययन शिविर एवं युवा शिविर आयोजित किए जाते हैं...।

5 जून 2022 पर्यावरण बचाओ; सांस्कृतिक कार्यक्रम

5 जून 2022 पर्यावरण बचाओ; सांस्कृतिक कार्यक्रम आश्रम युवा दल द्वारा।

"जब मन स्थिर होता है, तब सत्य को मौन की शुद्धता में सुनने का मौका मिलता है। हमारा वास्तविक शत्रु कोई बाहरी ताकत नहीं है, बल्कि हमारी खुद की कमजोरियो का रोना, हमारी कायरता, हमारा स्वार्थ, हमारा पाखंड, हमारा पूर्वाग्रह है। लक्ष्यहीन जीवन हमेशा एक परेशान जीवन होता है।"

प्रार्थना सभा

11 जून 2022 को आश्रम परिवार की वरिष्ठ सदस्या और साधिका श्रीमती निशा वर्मा श्रीमाँ की गोद में चिरविश्राम के लिए सो गईं, उनकी आत्मा की शान्ति के लिए दिनांक 14 जून को प्रार्थना सभा आयोजित की गई।

21 जून 2022, अंतरराष्ट्रीय योग-दिवस

21 जून 2022, अंतरराष्ट्रीय योग-दिवस डॉ कटोच के सौजन्य से।

ॐ तत्सवितुर्वरं रूपं ज्योतिः परस्य धीमहि ।
यन्नः सत्येन दीपयेत् ॥